मदन मोहन पाठक और एक अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

(Madan Mohan Pathak and Another

vs.

The Union of India and Others)

और

राम प्रकाश मनचन्दा और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

(Ram Parkash Manchanda and Others

Vs.

The Union of India and Others)

(21 फरवरी, 1978)

(मुख्य न्यायाधिपति एम० एच० बेग, न्यायाधिपति वाई०वी० चन्द्रचूड़, पी० एन० भगवती, वी० आर० कृष्ण अय्यर, एस० मुर्तजा फज़ल अली, पी० एन० सिंघल और डी० ए० देसाई)

जीवन बीमा निगम (समझौते का उपान्तरण) अधिनियम, 1976 (1976 का 72)—सांविधानिकता—समझौते के अधीन वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को प्रोद्भूत होने वाला वार्षिक नकद बोनस ऐसा ऋण है जो अनुच्छेद 31(2) के अर्थान्तर्गत सम्पत्ति की प्रकृति का है—जीवन बीमा निगम को अन्तरण द्वारा आवश्यक अर्जन के लिए अधिनियम में किसी प्रतिकर का न होना—अधिनियम अनुच्छेद 31(2) का अतिक्रमण करता है—यह विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या अधिनियम अनुच्छेद 19(1)(च) का भी अतिक्रमण करता है [मुख्य न्यायाधिपति बेग के अनुसार अधिनियम अनुच्छेद 31(2) का अतिक्रमण नहीं करता बल्कि अनुच्छेद 19(1)(च) और 14 का अतिक्रमण करता है।]

संविधान—अनुच्छेद 19(1)(च), 31(1) और (2)—इन सभी सांविधानिक उपबन्धों में 'सम्पत्ति' का एक ही अर्थ है—इसका विशद् निर्वचन किया जाना चाहिए और यह हर प्रकार की सम्पत्ति के प्रति निर्देश करता है चाहे वह मूर्त हो अथवा अमूर्त ऋण हो अथवा अनुयोज्य वस्तुएं—अनुच्छेद 31(2) के अधीन अनुयोजन कार्यवाहियों को आवश्यक रूप से अर्जित किया जा सकता है।

संविधान—अनुच्छेद 31(2-क) और 31(2)—अनुच्छेद 31(2-क) में 'स्वामित्व का अन्तरण'—'स्वामित्व का अन्तरण' पद बहुत विस्तृत है और इसके अन्तर्गत वह हर एक पद्धति आती जिसके द्वारा स्वामित्व अन्तरित किया जा सकता है—किसी लेनदार के ऋण का निर्वापन जिसके साथ-साथ राज्य अथवा राज्य के स्वामित्वाधीन अथवा नियंत्रणाधीन निगम को फायदा पहुंचे, राज्य को स्वामित्व का अन्तरण है—राज्य स्वामित्वाधीन-निगम द्वारा कर्मचारियों को भुगतान किए जाने वाले बोनस को रद्द करना अपने को स्वामित्व का अन्तरण है और इसलिए अनुच्छेद 31(2) के अधीन आवश्यक अर्जन है।

संविधान—अनुच्छेद 31(2)—धनराशियों, ऋणों और और अनुयोज्य वस्तुओं का अर्जन लोक प्रयोजन की प्राप्ति के लिए किया जाना चाहिए, इससे यह विवक्षित नहीं है कि अपेक्षित सम्पत्ति का लोक प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाए।

संविधान—भाग 4—राज्य के नीति निदेशक तत्व आबद्धकर हैं—किसी अधिनियम अथवा राज्य की नीति की युक्तियुक्तता के लिए यह एक कसौटी है।

संविधान—अनुच्छेद 19(2) से (6)—युक्तियुक्तता का उदाहरण—किए गए वायदों और अभ्यावेदनों, सरकार के आचरण और उससे उत्पन्न होने वाले औचित्यों पर विचार करना आवश्यक है।

संविधान—अनुच्छेद 358 और 359 (1-क)—केवल उनका प्रवर्तन ही निलम्बित किया जाना—आपात् के उठा लिए जाने पर इन अनुच्छेदों के आधार पर विधानमण्डल के किसी कार्य पर

1978(2) eILR(PAT) SC 116

आक्षेप किया जा सकता है—विधिमान्य दावे आपात द्वारा स्वतः ही समाप्त नहीं हो जाते—अनुच्छेद 359 (1-क) में 'की गई अथवा जिनका किया जाना लोपित किया गया है' पद का निर्वचन संकुचित रूप में करना होगा।

जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 (1956 का 31) —धारा 49 (2) (ख) और (खख)—[सपठित जीवन बीमा निगम (कर्मचारिवृंद) विनियम, 1960 का विनियम 58]—वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को बोनस के संदाय के लिये तारीख 24 जनवरी, 1974 वाला समझौता किया जाना—केन्द्रीय सरकार एक बार बोनस के दिए जाने का अनुमोदन करने पर वह उसे अभिखण्डित नहीं कर सकती है—ऐसा करने से जीवन बीमा निगम औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 18(1) के अधीन समझौते के निबन्धनों के अनुसार बोनस का संदाय करने की अपनी बाध्यता का भंग करने के लिए विवश होगा।

कानूनों और दस्तावेजों का निर्वचन—विधानमण्डल का कोई अधिनियम किसी पक्षकार के अधिकारों को प्रभावी करने वाले अंतिम निर्णय को अकृत नहीं कर सकता है—किसी महसूल अथवा कर को अविधिमान्य अभिनिर्धारित करने वाले किसी घोषणात्मक निर्णय को विधिमान्यकरण कानून द्वारा अतिष्ठित किया सकता है—किन्तु जहां तथ्यात्मक अथवा विधिक स्थिति विधानमण्डल के किसी अधिनियम द्वारा भूतलक्षी रूप से परिवर्तित की जाती है तो निर्णय तब तक विधिमान्य रहता है जब तक अपील अथवा पुनर्विलोकन में उसे उलट न दिया जाए—अतः जीवन बीमा निगम (समझौते का उपान्तरण) अधिनियम, 1976 कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा समझौते के भंग के लिए जीवन बीमा निगम के विरुद्ध जारी किए गए तारीख 21 मई, 1976 वाले परमादेश के रिट को प्रभावित नहीं करता है।

शब्द और पद—'स्वामित्व का अन्तरण' का प्रविषय।

जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 की धारा 49 में यह उपबंध है कि निगम केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, निगम के कर्मचारियों और अभिकर्ताओं की भर्ती की पद्धति का उपबंध करने वाले और निगम

के कर्मचारियों की सेवा के निबन्धनों और शर्तों का उपबन्ध करने वाले ऐसे विनियम बना सकेगी जो अधिनियम से असंगत न हों। निगम ने कतिपय विनियम बनाए, उनमें से विनियम 58 में यह उपबंध किया गया था कि निगम केन्द्रीय सरकार के ऐसे निदेशों के अधीन रहते हुए जैसे वह दे, अपने कर्मचारियों को लाभ न होने पर भी बोनस में हिस्सा दे सकेगा। 1959 से निगम के और उसके कर्मचारियों के बीच बहुत से मामलों के बारे में जिनमें निगम के वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों से संबंधित बोनस सम्मिलित है, बहुत से समझौते हुए थे। अन्तिम समझौता 31 मार्च, 1973 को समाप्त हो जाने पर, निगम के कर्मचारियों ने एक मांगपत्र प्रस्तुत किया और 24 जनवरी, 1974 को एक समझौता हुआ। उस समझौते का खण्ड 8 यह था——

(i) लाभ न होने पर भी बोनस का हिस्सा दिया जाएगा किन्तु निगम ऐसे निदेशों के अधीन रहते हुए, जैसे केन्द्रीय सरकार समय-समय पर जारी करे, वर्ग 3 और वर्ग 4 के अपने कर्मचारियों को किसी अन्य प्रकार का बोनस दे सकेगा।

(ii) वर्ग 3 और वर्ग 4 के सभी कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस वार्षिक वेतन के (अर्थात् मूल वेतन जिसमें विशेष वेतन, यदि कोई हो और मंहगाई भत्ता तथा अतिरिक्त मंहगाई भत्ता—सम्मिलित हैं) जो किसी कर्मचारी द्वारा उस वित्तीय वर्ष की बाबत वस्तुतः लिया जाता है जिससे बोनस संम्बंधित है, 15 प्रतिशत की दर पर संदत्त किया जाएगा।

(iii) जैसा कि इसमें उपबंधित किया गया है, उसे छोड़ते हुए बोनस की स्वीकार्यता और संदाय से सम्बद्ध सभी अन्य निबन्धन और शर्तें वे होंगी जैसी कि बोनस के बारे में तारीख 26 जून, 1972 वाले समझौते में अधिकथित की गई हैं।

खण्ड 12 में यह उपबंध था कि समझौता 1 अप्रैल, 1973 से प्रभावी होगा और वह चार वर्ष की अवधि के लिए अर्थात 1 अप्रैल, 1973 से 31 मार्च, 1977 तक के लिए होगा। उसके पश्चात् नकद बोनस के संदाय से सम्बन्धित बहुत से मामलों के बारे में बहुत से प्रशासनिक अनुदेश जारी किए गए जिनमें से एक में यह उपबंध था कि सेवा निवृति अथवा मृत्यु की दशा में सेवा की समाप्ति की

तारीख तक के वेतन को कर्मचारी अथवा उसके वारिसों को संदेय बोनस की रकम अवधारित करने के प्रयोजनार्थ विचार में लिया जाएगा। ऐसे ही एक अन्य निदेश में यह उपबंध था कि बोनस अप्रैल मास के वेतन के साथ संदत्त किया जाएगा किन्तु सेवा निवृत्ति अथवा मृत्यु की दशा में संदाय आकस्मिकता के पश्चात् शीघ्र ही संदेय किया जाएगा। वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को प्रथम दो वर्षों के लिए अर्थात 31 मार्च, 1975 तक बोनस का संदाय कर दिया गया था। सितम्बर, 1975 में भारत के राष्ट्रपति ने बोनस (संशोधन) अध्यादेश, 1975 प्रख्यापित किया जिसके पश्चात् बोनस संदाय (संशोधन) अधिनियम, 1976 पारित किया गया। अध्यादेश और अधिनियम जीवन बीमा निगम के कर्मचारियों को लागू नहीं होता था। केन्द्रीय सरकार ने यह विनिश्चय किया कि उन स्थापनों के कर्मचारी जो बोनस संदाय अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते हैं, बोनस के संदाय के पात्र नहीं होंगे बल्कि उन्हें बोनस के बजाय ऐसा आनुग्रहिक नकद संदाय किया जाएगा जैसा कि हर एक मामले में मजदूरी स्तर और वित्तीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सरकार अवधारित करे और ऐसा संदाय अधिकतम 10 प्रतिशत के अधीन होगा। इस विनिश्चय के अनुसरण में वित्त मंत्रालय ने जीवन बीमा निगम को यह सलाह दी कि जीवन बीमा निगम के कर्मचारियों को इसके आगे बोनस का संदाय सरकार से स्वीकृति प्राप्त किए बिना न किया जाए। अतः जीवन बीमा निगम ने ऐसे परिपत्र जारी किए कि चूंकि बोनस संदाय के प्रश्न का पुनर्विलोकन किया जा रहा है अतः विद्यमान उपबंधों के अधीन कर्मचारियों को आगे अनुदेश किए जाने तक बोनस का कोई संदाय न किया जाए। उस पर बीमा कर्मचारी एसोसिएशन ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में एक रिट पिटीशन फाइल किया और 21 मई, 1976 को एकल न्यायाधीश ने वह रिट पिटीशन मंजूर कर लिया और परमादेश का रिट जारी किया जिसमें जीवन बीमा निगम को यह निदेश दिया गया कि वह तारीख 24 जनवरी, 1974 वाले समझौते के निबन्धनों के अनुसार कार्य करे और साथ ही एक प्रतिषेध का रिट भी जारी किया जिसके द्वारा यह निदेश दिया गया कि जीवन बीमा निगम अप्रैल 1976 मास के वेतन के साथ नकद बोनस संदाय करने से, जैसा कि प्रशासनिक अनुदेशों के साथ पठित समझौते में उपबंध है, इनकार न करे। जीवन बीमा निगम ने एक लैटर्स पेटेंट अपील प्रस्तुत की

किन्तु इस बीच 29 मई, 1976 को आक्षेपित अधिनियम अर्थात् जीवन बीमा निगम (समझौते का उपान्तरण) अधिनियम, 1976 प्रवृत्त हो गया और इसलिए जीवन बीमा निगम की ओर से खण्ड न्यायपीठ के समक्ष यह कथन किया गया कि अपील में अग्रसर होने की कोई आवश्यकता नहीं है और इसलिए खण्ड न्यायपीठ ने एकल न्यायाधीश के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया । आक्षेपित अधिनियम की धारा 3 में यह उपबंध किया गया था कि--

> "औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में किसी बात के होते हुए भी हर एक समझौते के उपबंध, जहाँ तक कि वे निगम के वर्ग 3 और वर्ग 4 के हर एक कर्मचारी को वार्षिक नकद बोनस के उसके वार्षिक वेतन के 15 प्रतिशत की दर पर संदाय से संबंधित हैं प्रवृत्त अथवा प्रभावी नहीं होंगे और उनके बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि अप्रैल, 1975 के प्रथम दिन को और से वे प्रवृत्त अथवा प्रभावी हुए थे ।"

अतः आक्षेपित अधिनियम का प्रभाव वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस से वंचित करना था जिसके वे 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 तक और 1 अप्रैल, 1976 से 31 मार्च, 1977 तक के लिए समझौते के खण्ड 8 (ii) के अधीन हकदार थे । अतः कर्मचारियों ने आक्षेपित अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती देते हुए कि यह संविधान के अनुच्छेद 31 (2) और 19 (1) (च) का अतिक्रमण करता है उच्चतम न्यायालय में रिट फाइल किया । यह भी दलील दी गई कि आक्षेपित अधिनियम में ऐसी कोई बात नहीं है जो कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के प्रभाव को अथवा जीवन बीमा निगम के विरुद्ध जारी किए गए परमादेश के रिट के आबद्धकर स्वरूप को निरर्थक करने वाली हो । रिट पिटीशन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित---यह सत्य है कि बोनस प्राप्त करने का अधिकार जिसे केन्द्रीय सरकार ने अपने आदेशों और समझौते के अधीन अपने आचरण, दोनों के द्वारा ही सम्पत्ति के अधिकार को मान्य ठहराया है, तो भी चूंकि अर्जन को संविधान के अनुच्छेद 31 (2क) में परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है 'जहां विधि किसी सम्पत्ति के स्वामित्व का या

कब्जा रखने के अधिकार का हस्तांतरण राज्य या किसी ऐसे निगम को, जो कि राज्य के स्वामित्व या नियन्त्रण के अधीन है, करने के लिए उपबन्ध नहीं है, करती, हैं वहां इस बात के होते हुए भी कि वह किसी व्यक्ति को उसकी सम्पति से वंचित करती है, उसकी बाबत यह न समझा जाएगा वह सम्पति के अनिवार्य अर्जन या अधिग्रहण के लिए उपबंध करती है। यह बात संदेहास्पद है कि प्रस्तुत मामले में अर्जन की परिभाषा यथेष्ट है। (पैरा 16)

आक्षेपित अधिनियम की धारा 3 को संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) के उपबन्ध लागू होते हैं और संविधान के अनुच्छेद 19 (6) द्वारा उसकी व्यावृत्ति नहीं होती है। आक्षेपित अधिनियम शुद्ध और सरल रूप से वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों के अधिकारों का वंचन का ऐसा मामला है जिसका किसी लोक हित से कोई प्रकट सम्बन्ध नहीं है। (पैरा 18 और 6)

कर्मचारियों की इस दलील का कोई आधार नहीं है कि अनुच्छेद 43 राज्य पर कर्मकारों की निर्वाह-मजदूरी सुनिश्चित करने के लिए बाध्यता अधिरोपित करता है और वह देश का शासन करने में घोषित मूलभूत सिद्धान्तों का भाग है। अनुच्छेद 37 में यह कहा गया है कि वे "किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होंगे। प्रत्यक्ष रूप से प्रवर्तित किए बिना उन्हें महत्व देने और न्यायालयों में प्रभावी करने का सर्वोत्तम ढंग युक्तियुक्तता के रूप में और इसलिए विधिमान्यता की कसौटी के रूप में उनका प्रयोग करना है। इस प्रकार यदि अनुच्छेद 38, 39 और 43 के उद्देश्यों के प्रति अग्रसर होना वांछनीय है तो किसी विधिमान्य कारण की अवहेलना किए बिना मन-माने तौर पर मजदूरी की दरों में कोई कमी नहीं की जानी चाहिए। प्रस्तुत मामले में आक्षेपित अधिनियम ऐसे समझौते के फायदे से कर्मकारों को वंचित करना चाहता है। जिसके लिए केन्द्रीय सरकार ने अनुमति दी थी। उसके बारे में भली-भान्ति यह कहा जा सकता है कि यह लोकहित के प्रतिकूल है और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 19(6) द्वारा संरक्षित नहीं है। भारत संघ बनाम मैसर्स इण्डो अफगान एजेन्सीज लिमिटेड वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धान्त को भी इस मामले के उपबन्धों की युक्तियुक्तता का निर्णय करते समय विचार में लिया जा सकता है। यह सत्य है कि प्रस्तुत मामले में यह संसद के अधिनियम का

एक उपबन्ध है और मात्र रूप से ऐसा सरकारी आदेश नहीं है जिसकी विधिमान्यता पर उच्चतम न्यायालय के समक्ष आपत्ति की गई है। तो भी वह अधिनियम उस समय की सरकार द्वारा की गई प्रस्थापना का परिणाम है, जिसने जीवन बीमा निगम अधिनियम की धारा 11 (2) के अधीन अग्रसर होने की बजाय आपात उपबन्धों से संरक्षित संसदीय अधिनियम बनाने का विकल्प अपनाया। जिन सम्भाव्यताओं का वचन दिया गया था, जिन अभ्यावेदनों ने सरकार को संचालित किया, और उससे उत्पन्न होने वाली स्थितियों को भी यह निर्णय करते समय विचार में लिया जाना चाहिए कि क्या सरकार द्वारा शुरू किया गया और संसद द्वारा अधिनियमित विधान का कोई विशेष भाग युक्तियुक्त है। (पैरा 12 और 13)

आक्षेपित अधिनियम अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करता है। ऐसे समझौते को रद्द करने के लिए, जो उच्च न्यायालय के विनिश्चय का आधार बन चुका है विधायी प्रक्रिया अपनाना अनुचित होगा। यहां तक कि यदि विधान किसी विनिश्चय के आधार को समाप्त कर सकता है तो इसे ऐसा किसी वर्ग के सामान्य अधिकारों को प्रवर्तित करके करना होगा न कि निगम के और इसके कर्मचारियों के बीच हुए दो विनिर्दिष्ट समझौतों को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के क्षेत्र से सादे तौर पर अपवर्जित करते हुए जिनके बारे में उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वे विधिमान्य और प्रवर्तनीय हैं। ऐसा मनमाना अपवर्जन अनुच्छेद 14 का भी अतिवर्तन कर सकता है। निगम को काफी लाभ होते रहे हैं जिससे कि निगम के हितों अथवा पालिसीधारकों के हितों को खतरे में डालने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता था। वह अधिनियम जीवन बीमा निगम के निम्नतर स्तर के कर्मचारिवृन्द के विरुद्ध किए गए मनमाने विभेद के अतिरिक्त कुछ नहीं है। (पैरा 5 और 14)

अनुच्छेद 14 और 19 पर आधारित आपत्ति की विधिमान्यता ही आपात के दौरान निलम्बित की गई थी। किन्तु इस रोक के हटा लिए जाने पर, संविधान का अनुच्छेद 14 और 19 जिसका प्रयोग निलम्बित किया गया था, किसी भी ऐसे विधान को अविधिमान्य ठहराएगा जो अवैध है। दूसरे शब्दों में, अविधिमान्यता की घोषणा आपात के दौरान रोक दी गई थी। अनुच्छेद 358 और 359 (1क) दोनों ही यह उपबन्ध करते है कि

जैसे ही आपात की उद्घोषणा प्रवर्तित होना बन्द हो जाती है तो निलम्बन का प्रभाव, उस विधि के ऐसा प्रभाव रखना बन्द किए जाने से पूर्व की गई अथवा किए जाने से लोपित बातों के सिवाय" समाप्त हो जाना चाहिए। 'की गई और किए जाने से छोड़ दी गई' बातों का निर्वचन बहुत संकुचित रूप से किया जाना चाहिए। यदि ऐसा है तो इससे अभिप्रेत है कि उन समझौतों के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वे समाप्त किए जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उनके अधीन संदाय अस्थायी रूप से निलम्बित कर दिए गए थे। प्रकट रूप से इससे यह अभिप्रेत है कि उनके अधीन आपात के दौरान किसी संदाय की मांग नहीं की जा सकती थी किन्तु जैसे ही आपात समाप्त हुआ समझौते पुनः प्रवर्तित हो गए और जिस बात की आपात के दौरान मांग नहीं की जा सकती थी वह आपात की उस अवधि के लिए भी संदेय हो जाएगी जिसके लिए संदाय निलम्बित किया गया था। अन्यथा अधिनियमिति का प्रभाव आपात के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी होगा। (पैरा 18 और 19)

कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय को प्रभावी करना वही बात नहीं है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन किसी अधिकार को प्रवर्तित करना। यदि निर्णय द्वारा प्रदत्त अधिकार को पृथक् रूप से अपास्त करना चाहा जाता है तो मेरी यह राय है कि अधिनियम की धारा 3 न्यायिक शक्ति पर अतिक्रमण करने के कारण अविधिमान्य होगी। यहां तक कि यदि अधिनियम की धारा 3 कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के आधार को, इसका उल्लेख किए बिना ही, ऐसा अधिनियमन करके समाप्त करना चाहती है जिससे विधि की प्रतीति हो, तो भी वह निर्वचन अपनाना चाहिए जो इन अधिकारों को कायम रखने वाला है। (पैरा 9 और 10)

आक्षेपित अधिनियम के अधिनियमित किए जाने की तारीख को अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के निबन्धन निम्नलिखित थे "कोई सम्पत्ति सार्वजनिक प्रयोजन के लिए ही और ऐसी विधि के प्राधिकार से अनिवार्यतः अर्जित या अधिगृहीत की जाएगी जो सम्पत्ति के अर्जन या अधिग्रहण का, ऐसी राशि के बदले जो उस विधि द्वारा नियत की जाए या जो ऐसे सिद्धान्तों के अनुसार अवधारित की जाए, और ऐसी रीति से दी जाए जो उस विधि में विनिर्दिष्ट हों, उपबन्ध करती है और ऐसी किसी विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जाएगी कि इस प्रकार नियत या अवधारित राशि पर्याप्त नहीं है अथवा

ऐसी पूरी राशि या उसका कोई भाग नकद न दिया जा कर अन्यथा दिया जाना है।" अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 31 में खण्ड (2क) और (2ख) इस प्रकार हैं "(2क) जहां विधि किसी सम्पत्ति के स्वामित्व का या कब्जा रखने के अधिकार का हस्तान्तरण, राज्य या किसी ऐसे निगम को, जो कि राज्य के स्वामित्व या नियन्त्रण के अधीन है, करने के लिए उपबन्ध नहीं करती हैं, वहां इस बात के होते हुए भी कि वह किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से वंचित करती है, उसकी बाबत यह नहीं समझा जाएगा कि वह सम्पत्ति अनिवार्य अर्जन या अधिग्रहण के लिए उपबन्ध करती है। (2ख)—अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के उपखण्ड (च) की कोई बात किसी ऐसी विधि पर प्रभाव नहीं डालेगी जो खण्ड (2) में निर्दिष्ट है। इन परिस्थितियों में यह बात समझना कठिन है कि जीवन बीमा निगम किसी प्रकार यह दावा कर सकता था कि वह आक्षेपित अधिनियम का अवलम्ब लेते हुए परमादेश के रिट को पूरा करने के लिए निर्णय द्वारा अधिरोपित बाध्यता से मुक्त है। (पैरा 11 और 9)

विनियम 58 में असंदिग्ध रूप से यह कहा गया है कि बिना लाभ हुए भी बोनस में हिस्सा जीवन बीमा निगम द्वारा अपने कर्मचारियों को ऐसे निदेशों के अधीन दिया जा सकता है जैसे केन्द्रीय सरकार दे और इसलिए यदि केन्द्रीय सरकार इसके प्रतिकूल निदेश देती है तो लाभ न होने पर भी बोनस में कोई हिस्सा जीवन बीमा निगम द्वारा अपने कर्मचारियों के किसी भी वर्ग को नहीं दिया जा सकता। किन्तु प्रस्तुत मामले में जीवन बीमा निगम द्वारा समझौते के खण्ड 8(ii) के अधीन वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को जीवन बीमा निगम द्वारा वार्षिक नकद बोनस का दिया जाना केन्द्रीय सरकार ने अनुमोदित किया था जैसा कि खण्ड 12 में उपबन्धित किया गया था और विनियम 58 में अनुध्यात 'निदेश' केन्द्रीय सरकार द्वारा दिया गया था कि समझौते के खण्ड 8(ii) में यथा-उपबन्धित वार्षिक नकद बोनस दिया जा सकता है। उसके पश्चात केन्द्रीय सरकार ऐसा कोई प्रतिकूल निदेश देने के लिए प्रभाव सक्षम नहीं थी जिसका प्रभाव यह हो कि वह जीवन बीमा निगम को समझौते के खण्ड 8(ii) के निबन्धनानुसार औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 18 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक नकद बोनस का संदाय करने की अपनी बाध्यता को भंग करने के लिए विवश करे। वह समझौता सुलह कार्यवाहियों के अनुक्रम से अन्यथा होने के कारण औद्योगिक विवाद

अधिनियम, 1947 की धारा 18 की उपधारा (1) के अधीन पक्षकारों पर आबद्धकर था और चूंकि चार एसोसिएशनों के, जो समझौते के पक्षकार थीं अन्तर्गत सभी वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारी थे, अतः वह समझौता जीवन बीमा निगम पर और उसके वर्ग 3 और वर्ग 4 के सभी कर्मचारियों पर आबद्धकर था। (पैरा 32 और 23)

समझौते के खण्ड 8(i) के अधीन जीवन बीमा निगम द्वारा लाभ न होने पर भी बोनस में हिस्सा ऐसे निदेशों के अधीन रहते हुए, जैसे केन्द्रीय सरकार समय-समय पर जारी करे, दिया जा सकता था किन्तु केन्द्रीय सरकार को समय-समय पर निदेश देने की अध्यारोही शक्ति देने वाले इन शब्दों का खण्ड 8(ii) में प्रमुख रूप से अभाव है और यह बात समझना कठिन है कि उस खण्ड में इन्हे किस प्रकार रखा जा सकता था अथवा समझा जा सकता था। खण्ड 8(i) और (ii) सुभिन्न और पृथक् खण्ड हैं और जब कि खण्ड 8(i) एक सामान्य उपबन्ध अधिनियमित करता हैं जो यह है कि जीवन बीमा निगम द्वारा वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को लाभ न होने पर भी बोनस का हिस्सा ऐसे निदेशों के अधीन दिया जा सकता है जैसा कि केन्द्रीय सरकार समय-समय पर जारी करे। खण्ड 8(ii) में लाभ न होने पर बोनस के हिस्से की बात कही गई है और विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबन्ध किया गया है कि वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को वार्षिक वेतन के 15 प्रतिशत की दर पर वार्षिक नकद बोनस का संदाय भी किया जाएगा और वार्षिक नकद बोनस के संदाय के बारे में इस विनिर्दिष्ट उपबन्ध को केवल केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन के अधीन किया गया है, जो स्वीकृत रूप से अभिप्राप्त कर लिया गया था। अतः यह स्पष्ट है कि वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को समझौते के खण्ड 8(ii) के निबन्धनों के अनुसार जीवन बीमा निगम से वार्षिक नकद बोनस प्राप्त करने का आत्यंतिक अधिकार प्राप्त था और केन्द्रीय सरकार उसके संदाय से इनकार करने अथवा उसे रोकने हेतु जीवन बीमा निगम को कोई निदेश देने के लिए सक्षम नहीं थी। (पैरा 32)

समझौते के खण्ड 8(ii) के अधीन किसी विशेष वर्ग के लिए वार्षिक नकद बोनस उस वित्तीय वर्ष की बाबत जिससे बोनस सम्बन्धित है, कर्मचारी द्वारा वस्तुतः लिए गए वार्षिक वेतन के 15 प्रतिशत की दर पर संदेय है, और इसलिए यह प्रतीत होगा कि बोनस वर्ष के अन्त में संदेय

था न कि उस से पूर्व। किन्तु जीवन बीमा निगम की ओर से इस बारे में विवाद नहीं किया गया है कि ऐसा कोई भी कर्मचारी जो वर्ष के बीत जाने के पूर्व सेवा निवृत्त हो चुका है, अथवा त्यागपत्र दे देता है, और साथ ही मृतक कर्मचारी के ऐसे वारिस जिनकी वर्ष के दौरान मृत्यु हो जाती है, आनुपातिक बोनस प्राप्त करने के हकदार हैं और वस्तुतः जीवन बीमा निगम ने तारीख 29 मार्च, 1974 वाले प्रशासनिक अनुदेशों में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि यह स्थिति सही है और वस्तुतः सेवा-निवृत्त अथवा त्यागपत्र देने वाले कर्मचारी और मृत कर्मचारी के वारिसों को आनुपातिक बोनस का संदाय किया जाए। समझौते के खण्ड 8(ii) के अधीन संदेय वार्षिक नकद बोनस दिन प्रतिदिन प्रोद्भूत हुआ यद्यपि वह सेवा-निवृत्ति, त्यागपत्र अथवा मृत्यु की दशा में उस आकस्मिकता के होने पर ही संदेय है और अन्यथा बोनस से संबंधित वर्ष के बीत जाने पर संदेय है। इस प्रकार सहज रूप से और निःसंदेह रूप से वर्ग 3 और वर्ग 4 के हर एक कर्मचारी को वार्षिक नकद बोनस की बाबत एक ऋण दिन प्रतिदिन प्रोद्भूत हुआ और परिणामस्वरूप 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष की समाप्ति पर समझौते के खण्ड 8(ii) के अधीन संदेय वार्षिक नकद बोनस एक शोध्य ऋण था और वह जीवन बीमा निगम से वर्ग 3 और वर्ग 4 के हर एक कर्मचारी को देय था और उस तारीख को भी जब आक्षेपित अधिनियम प्रवृत्त हुआ वर्ग 3 और वर्ग 4 का हर एक कर्मचारी शोध्य ऋण का हकदार था और उसे 1 अप्रैल, 1976 से अद्यतन तारीख तक वार्षिक नकद बोनस की बाबत जीवन बीमा निगम पर उसका ऋण था। (पैरा 33)

संयुक्त यदि राज्य अमेरिका में यह दृष्टिकोण अभिभावी रहा है कि अनुयोज्य वस्तु सर्वोपरि आधिपत्य की शक्ति के भीतर नहीं आ सकती तो भी हमारे लिए अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के प्रविषय और परिधि का निर्वचन करने में इस दृष्टिकोण से असम्यक रूप से प्रभावित होना ठीक नहीं है। हमें सर्वोपरि आधिपत्य के विषय पर संयुक्त राज्य अमेरिका में की विधि से लिए गए किन्हीं पूर्व कल्पित सिद्धांतों के बिना अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का निर्वचन उसके ही निबन्धनों के आधार पर करना चाहिए। यह बात तर्कसम्मत नहीं है कि 'सम्पत्ति का अनुच्छेद 19(1) (च) में एक अर्थ हो सकता है और अनुच्छेद 31 के खण्ड (1) में एक अन्य अर्थ हो सकता है और अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) में उससे

भी भिन्न अर्थ हो सकता है। इन सभी तीनों अनुच्छेदों में 'सम्पत्ति' का एक ही अर्थ होना चाहिए और चूंकि यह ऐसे सांविधानिक उपबन्ध हैं जिनका आशय मूल अधिकार सुनिश्चित करना है अतः उसका विशद अर्थान्वयन किया जाना चाहिए और उनके बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वे हर प्रकार की सम्पत्ति के प्रति निर्देश करते हैं। न्यायशास्त्रीय रूप से ऋण और अनुयोजन के अन्य अधिकार सम्पत्ति हैं और सांविधानिक गारंटी के संरक्षण में उन्हें अपवर्जित करने का कोई कारण नहीं है। (पैरा 35 और 34)

धन और अनुयोज्य वस्तुओं को आवश्यक अर्जन की शक्ति के भीतर नहीं लिया जा सकता है क्योंकि जो एकमात्र प्रयोजन ऐसे लेने से पूरा होगा वह राज्य के राजस्व में वृद्धि करना है और स्पष्ट रूप से वह एक लोक प्रयोजन नहीं है। वह आधार जिस पर यह तर्क आधारित है यह है कि वह एकमात्र प्रयोजन जिसके लिए अनुयोज्य वस्तु को अर्जित किया जा सकता है, वह राज्य के राजस्व में वृद्धि करना है और ऐसे अर्जन का कोई अन्य प्रयोजन नहीं हो सकते हैं। किन्तु यह आधार सहज रूप से गलत है और उस प्रकार इस पर आधारित तर्क भी है। अनुयोजन वाद को राज्य के राजस्व में वृद्धि करने मात्र से भिन्न लोक प्रयोजन के लिए अर्जित क्यों नहीं किया जा सकता है? निर्धन और दीन खेतिहरों, दस्तकारों और भूमिहीन श्रमिकों द्वारा साहूकारों को देय ऋण हो सकते हैं और राज्य ऐसे ऋणों को निर्धन और शोषित व्यक्तियों को परेशानी और दमन से, जो कि आर्थिक रूप से समृद्ध उनके लेनदार कर सकते हैं, मुक्ति दिलाने की दृष्टि से अर्जित कर सकता है।

हाल ही के विनिश्चयों की प्रवृत्ति ऋण अथवा अनुयोजन वस्तु को सम्पत्ति समझने की रही है जिसे अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन आवश्यक रूप से अर्जित किया जा सकता है। तदनुसार हमारा यह दृष्टिकोण है कि जीवन बीमा निगम से वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस की बाबत देय ऋण अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अर्थ के भीतर 'सम्पत्ति' हैं और उन्हें उस खण्ड के अधीन आवश्यक रूप से अर्जित किया जा सकता है। (पैरा 35, 37 और 38)

कामेश्वर सिंह वाले मामले में बहुमत वाले न्यायाधीशों के दृष्टिकोण और मध्य प्रदेश राज्य बनाम रानोजी राव शिंदे वाले विनिश्चय

के अलावा इस न्यायालय का ऐसा कोई अन्य विनिश्चय नहीं है जिसमें यह दृष्टिकोण अपनाया गया हो कि अनुयोज्य वस्तु को अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन आवश्यक रूप से अर्जित नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः पश्चातवर्ती ऐसे विनिश्चय हैं जो स्पष्टतया इसके प्रतिकूल सुझाव देते हैं। उच्चतम न्यायालय ने आर० सी० कूपर वाले मामले के प्रति पहले ही निर्देश कर दिया है। उस मामले में न्या० शाह के बहुमत वाले निर्णय में 'सम्पत्ति' शब्द को सर्वाधिक विस्तृत अर्थ दिया गया है जिसे आवश्यक रूप से अर्जित किया जा सकता है और इसके भीतर ऐसे व्यक्ति को अधिकार भी हैं जिन्हें अन्तरित अथवा हस्तांरित किया जा सकता है जैसा कि ऋण। कामेश्वर सिंह वाले मामले में बहुमत वाला दृष्टिकोण और मध्यप्रदेश राज्य बनाम रानोजी राव शिंदे वाले मामले में इस मुद्दे पर विनिश्चय को अब न्या० शाह के बहुमत वाले निर्णय में और उसके पश्चात् प्रिवी पर्स वाले मामले में मु० न्या० हिदायतुल्लाह के निर्णय को विधि के इस कथन को ध्यान में रखते हुए विधिमान्य विधि नहीं माना जा सकता है। (पैरा 38)

निस्संदेह रूप से उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह कहा गया था कि वार्षिक नकद बोनस के संदाय के बारे में समझौते को अपास्त किया जा रहा है जिससे कि जीवन बीमा निगम कर्मचारियों को आनुग्रहिक संदाय कर सके। किन्तु आक्षेपित अधिनियम में इस आशय का कोई उपबंध नहीं था कि वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को उनको देय ऋण से वंचित किया गया था और उसके लिए कानून में प्रतिकर के संदाय का कोई उपबंध नहीं था। (पैरा 39)

अनुच्छेद 31 के खण्ड (2क) का निर्वचन करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि हम इसका जो निर्वचन कर रहें हैं वह अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन सांविधानिक गारंटी के प्रविषय और परिधि का अवधारण होगा। खण्ड (2क) का संकुचित पांडित्य पूर्ण रीति में अर्थान्वयन करना चाहिए और न ही पंडिताऊ अथवा बहुत अधिक विधिक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। निर्वचन विषय-सार से प्रेरित होना चाहिए। खण्ड (2क) में यह कहा गया है कि खण्ड (2) को लागू होने के लिए विधि ऐसी होनी चाहिए कि उसमें राज्य को अथवा राज्य के स्वामित्व में अथवा उसके द्वारा नियन्त्रित निगम को सम्पत्ति के

स्वामित्व का अन्तरण का उपबंध हो तो यह बात आवश्यक नहीं है कि विधि में ऐसे अन्तरण के लिए सुव्यक्त शब्दों में उपबंध किया जाए। स्वामित्व का अन्तरण पद भी बहुत महत्व का है और इसके अन्तर्गत ऐसा हर ढंग आता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को स्वामित्व अन्तरित किया जा सकता है। अन्तरण का ढंग एक प्रकार की सम्पत्ति से दूसरे प्रकार की सम्पत्ति के संबंध में भिन्न हो सकता है। यह अन्तरित की जाने वाली सम्पत्ति की प्रकृति पर निर्भर करता है। खण्ड (2क) ने यह घोषणा की कि यदि किसी विधि में राज्य को अथवा राज्य के स्वामित्व में अथवा उसके नियन्त्रण के अधीन निगम को सम्पत्ति के स्वामित्व का अन्तरण अथवा उसके कब्जे के अधिकार का उपबन्ध नहीं करती है तो उसके बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह सम्पत्ति आवश्यक अर्जन अथवा अधिग्रहण का उपबंध करती है। केवल ऐसे मामले में जिसमें विधि राज्य को अथवा राज्य के स्वामित्व में अथवा नियंत्रण के अधीन निगम को किसी सम्पत्ति के स्वामित्व का अन्तरण अथवा कब्जे के अधिकार का उपबन्ध करती है तो इसे अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) की चुनौती का सामना ऐसी विधि के रूप में करना होगा जो सम्पत्ति के आवश्यक अर्जन अथवा अधिग्रहण का उपबन्ध करती है। (पैरा 40 और 39)

प्रस्तुत मामले में आक्षेपित अधिनियम ने जीवन बीमा निगम द्वारा वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को देय ऋण निर्वापित कर दिए थे अथवा समाप्त कर दिए थे। (पैरा 41)

यह कहना सही नहीं है किसी अधिकार अथवा हित के स्वामित्व का अन्तरण तब तक नहीं हो सकता जब तक ऐसे अधिकार अथवा हित का अन्तरिती के हाथों में पृथक रूप से पहचानने योग्य अस्तित्व बना रहता है। ऐसे उदाहरण खोजना कठिन नहीं है जिनमें किसी अधिकार अथवा हित के स्वामित्व को निर्वापन द्वारा एक दूसरे व्यक्ति को अन्तरित किया जा सकता है। ऐसा मामला लें जिसमें पट्टाकर्ता पट्टेदार को अनुदत्त पट्टे को समपहरण के अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए समाप्त कर देता है अथवा पट्टेदार पटाकर्ता के पक्ष में पट्टा अभ्यर्पित कर देता है। ऐसे मामले में पट्टा समाप्त हो जाएगा और पट्टे का हित निर्वापित हो जाएगा और तदनुसार पट्टाकर्ता का प्रतिवर्तन पट्टाधृत हित के वापिस

मिल जाने पर पूर्ण स्वामित्व में विस्तृत हो जाएगा। उसमें स्पष्टतया पट्टेदार ने पट्टाधृति का पट्टाकर्ता को पट्टे के अवधारण और पट्टे के हित के निर्वापन के परिणामस्वरूप अन्तरण होगा। वही स्थिति तब होगी जब कोई विधि किसी पट्टे के रद्द किए जाने का उपबन्ध करती है और ऐसी दशा में यदि पट्टकर्ता राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व वाला अथवा उसके द्वारा नियन्त्रित निगम है तो यह अनुच्छेद 31 के खण्ड (2क) के अर्थ के भीतर पट्टाधृत हित के आवश्यक अर्जन की कोटि में आएगा। (पैरा 41)

लेनदार के ऋण का निर्वापन राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व/नियन्त्रण वाले निगम को तत्सम्बन्धी फायदे सहित सहज तौर पर और असंदिग्ध रूप से उसमें पूर्वकथित से पश्चात कथित को ऋण के निरूपण करने वाली रकम के स्वामित्व का अन्तरण अन्तर्वलित होगा। ऋण के निर्वापन का यह वास्तविक प्रभाव है और इसे ऋण के निर्वापन के प्ररूप का नाम देने से राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व/नियन्त्रण वाला निगम लेनदारों की जोखिम पर फायदा अभिप्राप्त नहीं कर सकता है और साथ ही अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के लागू होने को नहीं बचा सकता है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इस मामले में हमारा सरोकार ऐसे मामले से है जिसमें सांविधानिक रूप से प्रत्याभूत अधिकार को प्रवर्तित करना चाहा गया है और ऐसे अधिकार के संरक्षण को विधायी युक्तियों द्वारा विफल नहीं होने दिया जा सकता है अथवा भ्रामक नहीं बनने दिया जा सकता है। न्यायालयों को ऐसी चालों और युक्तियों को प्रकट करने के लिए तैयार रहना चाहिए और यह खोज निकालना चाहिए कि क्या विधान वस्तुतः और सारतः, किन्हीं मूल अधिकारों का अतिक्रमण करता है। (पैरा 41)

यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि आक्षेपित अधिनियम का प्रत्यक्ष प्रभाव वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को देय ऋणों के स्वामित्व को वार्षिक नकद बोनस की बाबत जीवन बीमा निगम को अन्तरित करना था और चूंकि जीवन बीमा निगम राज्य के स्वामित्व वाला निगम है आक्षेपित अधिनियम ऐसी विधि है जो अनुच्छेद 31 के खण्ड (2क) के अर्थ के भीतर राज्य द्वारा इन ऋणों के आवश्यक अर्जन उपबन्ध करती है। यदि ऐसा है तो आक्षेपित अधिनियम के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना

चाहिए कि वह अनुच्छेद 311 के खण्ड (2क) का अतिक्रमण करता है क्योंकि इसमें इन ऋणों के आवश्यक अर्जन के लिए किसी प्रतिकर के संदाय का बिल्कुल भी उपबन्ध नहीं किया गया है। (पैरा 42)

उच्चतम न्यायालय की यह सुस्थापित परम्परा रही है कि उससे अधिक कुछ विनिश्चित न किया जाए जो मामले के विनिश्चय के लिए नितान्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिए जाने पर कि आक्षेपित अधिनियम अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के भीतर आता है, अनुच्छेद 31 के खण्ड (2ख) के कारण इसकी विधिमान्यता की परख अनुच्छेद 19(1) (च) के प्रति निर्देश करके नहीं की जा सकती। अतः हम अनुच्छेद 19(1) (च) के बारे में हमारे समक्ष दिए गए रोचक तर्कों पर विचार-विमर्श नहीं करना चाहते हैं। (पैरा 43)

आक्षेपित अधिनियम की धारा 3 में यह उपबन्ध है कि समझौते के उपबन्ध, जहां तक कि वे वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों के वार्षिक नकद बोनस के संदाय से सम्बन्धित हैं, कोई बल अथवा प्रभाव नहीं रखेंगे और उनके बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि उनका 1 अप्रैल, 1975 से कोई बल अथवा प्रभाव था। किन्तु कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा जारी किया गया परमादेश का रिट, जिसमें जीवन बीमा निगम को 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिए बोनस की रकम का संदाय करने का निदेश दिया गया था आक्षेपित अधिनियम द्वारा अछूता छोड़ दिया गया था। जहां तक वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों का 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिए वार्षिक नकद बोनस के अधिकार का सम्बन्ध है, यह निर्णय में निश्चित हो गया था और उसके पश्चात् वे निर्णय द्वारा अनुदत्त परमादेश के रिट को न कि समझौते के अधीन वार्षिक नकद बोनस के किसी अधिकार को प्रवर्तित करने के हकदार हो गए थे। आक्षेपित अधिनियम के निर्णय के अधीन इस अधिकार को छीनना नहीं चाहा है। वह निर्णय अस्तित्व में बना रहा और जीवन बीमा निगम 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिए परमादेश के रिट का अनुपालन करते हुए वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस का संदाय करने के लिए आबद्ध था। जीवन बीमा निगम ने यह गलती की कि इसने लैटर्स पेटेंट अपील वापिस लेली और विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय को अन्तिम बन जाने दिया। (पैरा 19)

कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय, जिसका पिटीशनरों ने अवलम्ब लिया है, ऐसा मात्र घोषणात्मक निर्णय नहीं है जिसके द्वारा किसी महसूल अथवा कर को अविधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया है जिससे कि विधिमान्यकरण कानून, निर्णय में जिस त्रुटि का संकेत किया है उसे विधि का संशोधन करके भूतलक्षी रूप से ठीक कर सकता है और ऐसे महसूल अथवा कर को विधिमान्य बना सकता है। किन्तु यह ऐसा निर्णय है जो समझौते के अधीन पिटीशनरों के वार्षिक नकद बोनस के अधिकार को परमादेश का रिट जारी करते हुए जीवन बीमा निगम को ऐसे बोनस की रकम का संदाय करने का निदेश देकर प्रभावी बनाता है। यदि तथ्यात्मक विधिक स्थिति के भूतलक्षी रूप से परिवर्तित किए जाने के कारण निर्णय को गलत करार दे दिया जाता है तो उसका उपचार अपील अथवा पुनर्विलोकन है किन्तु जब तक कि निर्णय विधिमान्य है, उसकी उपेक्षा करते हुए, इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है और जीवन बीमा निगम द्वारा इसका पालन किया ही जाना चाहिए। किसी भी दशा में चाहे आक्षेपित अधिनियम सांविधानिक रूप से विधिमान्य है या नहीं, जीवन बीमा निगम कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए परमादेश के रिट का पालन करने के लिए और वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 के लिए वार्षिक नकद बोनस का संदाय करने के लिए आबद्ध है। (पैरा 30)

(न्यायाधिपति चन्द्रचूड़, फजल अली और सिंघल के अनुसार)—आक्षेपित अधिनियम अनुच्छेद 31(2) के उपबन्धों का अतिक्रमण करता है और इसलिए शून्य है। उन्होंने 1976 के रिट पिटीशन सं० 371 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के प्रभाव के बारे में कोई राय देना आवश्यक नहीं समझा। (पैरा 45)

अनुसृत निर्णय

पैरा

[1974] (1974) 2 एस० सी० आर० = 760 [1974] 2 उम० नि० प० 152 ;
गुजरात राज्य और एक अन्य बनाम श्री अम्बिका मिल्स लिमिटेड, अहमदाबाद
(The State of Gujarat and Another *Vs.* Shri Ambica Mills Ltd. Ahmedabad) ; 34

[1974] (1974) 1 एस० सी० आर० 671=[1973][3] उम० नि० प० 1222.
केरल राज्य बनाम ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्युफैक्चरिंग (वीविंग) कम्पनी लिमिटेड
[The State of Kerala *Vs.* The Gwalior Rayon Silk Manufacturing (Wvg.) Co. Ltd.]; 37

[1973] (1973) 2 एस० सी० आर० 405=[1973][1] उम० नि० प० 284.
पंजाब राज्य बनाम के० आर० ऐरि और सोभाग राय मेहता
(The State of Punjab *Vs.* K. R. Erry & Shobag Rai Mehta) ; 34

[1971] (1971) सप्लीमेंट एस० सी० आर० 634=[1971] 3 उम० नि० प० 305 :
देवकीनन्दन प्रसाद बनाम, बिहार राज्य
(Deokinandan Prasad *Vs.* The State of Bihar) ; 34

[1971] (1971) 3 एस० सी० आर० 9=[1971][1] उम० नि० प० 491.
हिज हाइनेस महाराजाधिराज माधव राव जीवाजी राव सिंधिया बहादुर और अन्य बनाम भारत संघ
(H. H. Maharajadhiraja Madhav Rao Jiwaji Rao Scindia Bahadur and Others *Vs.* The Union of India) ; 34,38

[1970] (1970) 3 एस० सी० आर० 530=[1974] 3 उम० नि० प० 1045 :
आर०सी० कूपर बनाम भारत संघ
(R. C. Cooper *Vs.* The Union of India) ; 34, 38

[1968] (1968) 2 एस० सी० आर० 366:
भारत संघ बनाम इण्डो अफगान एजेन्सीज लिमिटेड
(The Union of India *Vs.* Indo-Afgan Agencies Ltd.) ; 13

[1967] (1967) 2 एस० सी० आर० 143:
अजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य
(Ajit Singh *Vs.* The State of Punjab) 41

अवलम्बित निर्णय

[1976] ए० आई० आर० 1976 एस०सी० 1207 = (1976) सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 172 = [1976] 3 उम० नि० प० 1:
अपर जिला मजिस्ट्रेट जबलपुर, बनाम शिवकान्त शुक्ल
(Additional District Magistrate, Jabalpur *Vs.* Shiv Kant Shukla) 18

[1976] (1976) 2 एस० सी० आर० 347 = [1976] 1 उम० नि० प० 1:
इन्दिरा नेहरू गांधी बनाम राजनारायन
(Indira Nehru Gandhi *Vs.* Raj Narain); 5

निर्दिष्ट निर्णय

[1964] (1964) 2 एस० सी० आर० 608 :
पटेल गोरधनदास हरगोविन्द दास बनाम म्यूनिसिपल कमिश्नर अहमदाबाद
(Patel Gordhandas Hargovindas *Vs.* Municipal Commissioner Ahmedabad); 30

[1954] (1954) एस० सी० आर० 587 :
पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम सुबोध गोपाल बोस और अन्य
(The State of West Bengal *Vs.* Subhodh Gopal Bose and Others); 39

[1954] (1954) एस० सी० आर० 674 :
द्वारका दास श्री निवास, मुम्बई बनाम शोलापुर स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी लिमिटेड और अन्य
(Dwarka Das Shriniwas of Bombay *Vs.* Sholapur Spinining & Weaving Co. Ltd. and Others) 39

स्पष्ट किए गए निर्णय

[1970] (1970) 1 एस० सी० आर० 388=[1970] 2 उम० नि० प० 302 :
श्री पृथ्वी कॉटन मिल्स बनाम भड़ौच बरो म्यूनिसिपैलिटी
(Shri Prithvi Cotton Mills *Vs.* Baroch Borough Municipality); 30

[1968] (1968) 3 एस० सी० आर० 482=(1968) 1 उम० नि० प० 21 :
मध्य प्रदेश राज्य बनाम रानोजी राव शिंदे और एक अन्य
(The State of Madhya Pradesh *Vs.* Ranoji Rao Shinde and Another); 34, 37, 41

[1958] (1958) एस० सी० आर० 1122 :
बॉम्बे डाइंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड बनाम मुम्बई राज्य और अन्य
(Bombay Dying & Manufacturing Co. Ltd. *Vs.* The State of Bombay and Others); 35

[1952] (1952) एस० सी० आर० 889:
बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह और अन्य
(The State of Bihar *Vs.* Kameshwar Singh and Others) 35

आरम्भिक अधिकारिता : 1976 का रिट पिटीशन संख्या 108 और 1976 का रिट पिटीशन संख्या 174-177.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए रिट पिटीशन ।

पिटीशनरों की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 108 में) — सर्वश्री आर० के० गर्ग, एस० सी० अग्रवाल और अरुणेश्वर गुप्ता

पिटीशनरों की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 174-177 में)- सर्वश्री सोमनाथ चटर्जी, पी० के० चटर्जी और रतिन दास ।

प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से (सभी पिटीशनों से) — श्री एस० वी० गुप्ते महा-न्यायवादी श्री यू० आर० ललित, आर० एन० सचदे और कुमारी ए० सुभाषिणी

प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 108 में) और **प्रत्यर्थी संख्या 2-4 की ओर से** (रिट पिटीशन संख्या 174-77 में) — श्री एस० वी० गुप्ते, महा न्यायवादी और डी० एन० मिश्र

मध्यक्षेपी (ए० आई० एन० एल० आई० सी० एम्पलाइज फैडरेशन) **की ओर से** — श्री पी० एस० खेड़ा

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 108 में) — श्री मदन मोहन

पिटीशनरों की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 174-177 में) — श्री रतिन दास

प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से (सभी पिटीशनों में)। — श्री आर० एन० सचदे

प्रत्यर्थी संख्या 2-3 की ओर से (रिट पिटीशन 108 में) और **प्रत्यर्थी संख्या 2-4 की ओर से** (रिट पिटीशन संख्या 174-177 में) — मैसर्स जे० बी० दादाचांजी एण्ड कम्पनी

मध्यक्षेपी एल० आई० सी० एम्पलाइज फैडरेशन की ओर से — श्री पी० एस० खेड़ा

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति एम० एच० बेग ने दिया।

मुख्य न्यायाधिपति बेग—

जीवन बीमा निगम, जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) के अधीन गठित किया गया था। 1 जून, 1957 को केन्द्रीय सरकार ने अधिनियम की धारा 11 (1) के अधीन एक आदेश निकाला जिसके द्वारा वर्ग 3

और 4 के कर्मचारियों को लागू होने वाले वेतन मान मंहगाई भत्ता और सेवा की शर्तें विहित कीं। इन शर्तों में यह कहा गया है कि किसी बोनस का भुगतान नहीं किया जाएगा किन्तु जीवन बीमा और मुफ्त चिकित्सा जैसी प्रसुविधाओं का उपबन्ध किया जाएगा। 26 जून, 1959 को केन्द्रीय सरकार ने अधिनियम की धारा 11 (2) के अधीन एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा 1957 वाले आदेश के पैरा 9 को संशोधित किया गया जिसमें यह उपबन्ध किया गया कि लाभ में हिस्सा रखने वाले बोनस से भिन्न बोनस उन कर्मचारियों को भुगतान किया जाएगा जो 500/- रुपये प्रति मास से अनधिक वेतन पा रहे हैं। 2 जुलाई, 1959 को, जीवन बीमा निगम और कर्मचारियों के बीच एक समझौता हुआ जिसमें $1\frac{1}{2}$ मास के मूल वेतन की दर पर नकद बोनस के संदाय का उपबन्ध किया गया था जो 1 सितम्बर, 1956 से प्रभावी होना था और 31 दिसम्बर, 1961 तक विधिमान्य था। 1 जुलाई, 1960 में, कर्मचारियों के वर्गों की सेवा की शर्तों को विनियमित करने के लिए धारा 49 के अधीन विनियम विरचित किए गए। विनियम 58 में कर्मचारियों को अलाभ (नान-प्रोफिट) अंश का बोनस कर्मचारियों को दिए जाने का उपबन्ध किया गया था। पुन: 14 अप्रैल, 1962 को और तारीख 3 अगस्त 1963 को आदेश पारित किए गए जिनका प्रभाव बोनस के संदाय की पात्रता के लिए 500/- रूपये के निर्बन्धन को हटाना था। 29 जून, 1963 को जीवन बीमा निगम और उसके कर्मचारियों के बीच $1\frac{1}{2}$ मास के मूल वेतन की दर पर नकद बोनस के संदाय का एक अन्य समझौता हुआ। यह 31 मार्च, 1969 तक प्रवर्तित रहना था। 20 जून, 1970 को उसी दर पर नकद बोनस के संदाय का एक तीसरा समझौता किया गया जो 31 मार्च, 1972 तक प्रभावी रहना था। 26 जून, 1972 को सकल पारिश्रमिक (मूल और विशेष वेतन और मंहगाई भत्ता) के 10 प्रतिशत की दर पर नकद बोनस के संदाय का चौथा समझौता 1 अप्रैल, 1972 से लेकर 1973 तक प्रभावी किया गया। 21 जनवरी, 1974 और 6 फरवरी, 1974 को सकल पारिश्रमिक के 15 प्रतिशत के नकद बोनस के संदाय के समझौते किए गए जो 1 अप्रैल, 1973 से लेकर 31 मार्च, 1977 तक चार वर्ष के लिए विधिमान्य थे। यह स्पष्ट है कि यह तथाकथित 'बोनस' उपार्जित लाभों पर निर्भर नहीं थे और बढ़े हुए पारिश्रमिक के रूप में भी नहीं थे। इन समझौतों का

अनुमोदन जीवन बीमा निगम के निदेशकों ने और केन्द्रीय सरकार ने भी कर दिया था। अप्रैल में वेतन सहित समझौते के अनुसार बोनस के संदाय के लिए जीवन बीमा निगम ने 29 मार्च, 1974 को एक परिपत्र जारी किया। अप्रैल, 1974 में वर्ष 1973-74 के लिए बोनस का संदाय वस्तुतः समझौते के अनुसार किया गया था। पुनः अप्रैल, 1975 में वर्ष 1974-75 के लिए बोनस समझौतों के अनुसार दिया गया था। किन्तु 25 सितम्बर, 1975 को बोनस संदाय संशोधन अध्यादेश प्रख्यापित कर दिया गया था। 26-9-1975 को जीवन बीमा निगम ने एक परिपत्र जारी किया जिसमें यह कथन किया गया था कि अध्यादेश को ध्यान में रखते हुए बोनस के संदाय का पुनर्विलोकन किया जा रहा है और 22 मार्च, 1976 को वर्ष 1975-76 के लिए बोनस का संदाय अन्तिम विनिश्चय किए जाने तक प्रतिधारित किया जाना था। इसके विरूद्ध कलकत्ता उच्च न्यायालय में एक रिट पिटीशन फाइल किया गया। 21 मई 1976 को कलकत्ता उच्च न्यायालय ने वर्ष 1975-76 के लिए बोनस के संदाय हेतु जो (बोनस) अप्रैल, 1976 में वेतन सहित संदेय हो गया था पिटीशनरों के अधिकार को मान्यता देते हुए एक आदेश पारित किया और यह आदेश दिया कि कर्मचारियों को इसका भुगतान किया जाए। प्रकटतः बोनस को संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) और 31 (1) द्वारा संरक्षित पिटीशनरों के सम्पत्ति के अधिकार के भाग स्वरूप माना गया था। 29 मई, 1976 को संसद् ने जीवन बीमा निगम समझौते का उपान्तरण अधिनियम, 1976 अधिनियमित किया जिसके द्वारा पिटीशनरों को उस अधिकार से वंचित कर दिया गया जिसे समझौते में मान्यता दी गई थी, जिसका केन्द्रीय सरकार ने अनुमोदन किया था और कर्मचारियों को वस्तुतः बोनस के संदाय द्वारा उसका पालन किया गया था और अन्तिम रूप से 21 मई, 1976 को कलकत्ता उच्च न्यायालय के विनिश्चय के अधीन उसे अधिकार में संपरिवर्तित कर दिया गया था।

2. धारा 11 (2) के उपबन्ध इस प्रकार हैं--

"(2) जहां कि केन्द्रीय सरकार का समाधान हो जाता है कि जीवन बीमाकर्ताओं का नियन्त्रित कारबार निगम को अन्तरित और निगम में निहित हो गया है, उनके कर्मचारियों

के पारिश्रमिक के मापमान तथा उन कर्मचारियों को लागू सेवा सम्बन्धी अन्य निबन्धनों और शर्तों में एकरूपता लाने के प्रयोजन से ऐसा करना आवश्यक है अथवा यह कि निगम और उसके पालिसी धारकों के हितों में यह आवश्यक है कि कर्मचारियों या उनमें से किसी वर्ग को देय पारिश्रमिक में कमी अथवा उन कर्मचारियों को लागू सेवा सम्बन्धी अन्य निबन्धनों और शर्तों का पुनरीक्षण किया जाए, वहां केन्द्रीय सरकार उपधारा (1) में अथवा औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में अथवा किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि में अथवा किसी अधिनिर्णय, व्यस्थापन या करार में, जो तत्समय प्रवृत्त है, अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी उस पारिश्रमिक और सेवा सम्बन्धी अन्य निबन्धनों और शर्तों में इतनी मात्रा तक और ऐसी रीति से, जैसी वह ठीक समझती है (चाहे कर्मा करके या अन्यथा) परिवर्तन कर सकेगी और यदि वह परिवर्तन किसी कर्मचारी को स्वीकार्य नहीं है तो निगम उसके नियोजन का पर्यवसान उसके तीन मास के पारिश्रमिक के बराबर प्रतिकर तब के सिवाय देकर कर सकेगा जब कि उस कर्मचारी की सेवा संविदा में ऐसे पर्यवसान की लघुतर सूचना के लिए उपबन्ध किया गया है।

स्पष्टीकरण--इस उपधारा के अधीन कर्मचारी को देय प्रतिकर किसी पेंशन, उपदान, भविष्य-निधि धन अथवा किसी अन्य फायदे के, जिसका कर्मचारी अपनी सेवा संविदा के अधीन हकदार है, अतिरिक्त होगा और उसे प्रभावित नहीं करेगा।"

3. अधिनियम की धारा 11(2) से यह दर्शित होता है कि केन्द्रीय सरकार को पारिश्रमिक के वेतनमान और सेवा के निबन्धनों और शर्तों को संशोधित करने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त थी यदि उसका यह समाधान हो जाये कि निगम के अथवा पालिसीधारकों के हित इसकी मांग करते हैं। वस्तुतः ऐसे आदेश निगम के अथवा इसके पालिसीधारकों के हितों से संबंधित सामग्री का केन्द्रीय सरकार के समक्ष पेश किये जाने पर होने वाले समाधान के परिणामस्वरूप पारित किये जाने होते थे। किन्तु ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। वस्तुतः जो कुछ किया गया था वह यह था कि वह अधिनियम उन समझौतों के निबन्धनों को

अपास्त करने के लिये पारित किया गया था जो कलकत्ता उच्च न्यायालय के इन पक्षकारों के निर्णय में समाविष्ट किये गये थे ।

4. अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का निम्नलिखित रूप में कथन किया गया था —

"बोनस संदाय अधिनियम, 1965 के उपबन्ध भारत के जीवन बीमा निगम द्वारा नियोजित कर्मचारियों को लागू नहीं होते हैं । किन्तु व्यावहारिक रूप में निगम अपने कर्मचारियों को बोनस का संदाय करता रहा है । वर्ग 1 और वर्ग 2 के कर्मचारियों को बोनस का संदाय निगम के और ऐसे कर्मचारियों के बीच हुए करारों के अनुसरण में किया जा रहा है । वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को बोनस का संदाय निगम के और ऐसे कर्मचारियों के बीच समय-समय पर हुए समझौते के निबन्धनों के अधीन किया जा रहा है। निगम के और इसके वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों के बीच औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन, 24 जनवरी, 1974 को हुए समझौते के निबन्धनों के अनुसार, जो (समझौता) 31 मार्च, 1977 तक प्रवृत्त है, निगम द्वारा अपने वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को बोनस किसी अधिकतम सीमा के बिना उनके वार्षिक वेतन के 15 प्रतिशत की दर पर संदेय है।

2. अतः 1 अप्रैल, 1975 से निगम और इसके वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों के बीच 24 जनवरी, 1974 को हुए समझौते के इन उपबन्धों को अपास्त करने की प्रस्थापना है जिससे कि निगम ऐसे कर्मचारियों को अप्रतियोगी पब्लिक सैक्टर उद्यमों के कर्मचारियों को आनुग्रहिक संदाय करने के लिए सामान्य सरकारी पालिसी के आधार पर अवधारित दरों पर ऐसे कर्मचारियों को आनुग्रहिक संदाय करने में समर्थ हो सके ।

3. विधान का उद्देश्य उपर्युक्त उद्देश्य को प्राप्त करना है।"

5. उद्देश्यों और कारणों के कथन से यह प्रकट होता है कि आक्षेपित अधिनियम का प्रयोजन उन समझौतों को रद्द करना था जो

निगम के और इसके वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों के बीच 24 जनवरी, और 6 फरवरी, 1974 को हुए थे और जिन्हें वस्तुतः कलकत्ता उच्च न्यायालय ने आदेश द्वारा मान्य ठहराया था। यदि इस बात के गुणागुण पर विचार करें जिसे न्यायालयों ने सम्पत्ति पर अधिकार के रूप में मान्यता दी है तो यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि क्या यह वस्तुतः विधायी शक्ति का प्रयोग था अथवा ऐसी शक्ति का प्रयोग था जो अपील प्राधिकारी के समकक्ष शक्ति है। **श्रीमती इन्दिरा नेहरु गांधी** बनाम **राज नारायण**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह विनिश्चित किया कि सांविधानिक संशोधन भी संसद् द्वारा न्यायिक शक्ति का अपनाया जाना प्राधिकृत नहीं कर सकता। उस में अधिकथित कसौटी में से एक यह थी कि क्या विनिश्चय इस प्रकार का है जो पक्षकारों की सुनवाई की जाना अपेक्षित करता है अथवा दूसरे शब्दों में उसमें कम से कम ऐसी न्यायिककल्प प्रक्रिया अन्तर्वलित है जिसका संसद् अपनी विधायी शक्ति के प्रयोग में अनुसरण नहीं करती है। अधिनियम् की धारा 11(2) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया गया विनिश्चय उस में कथित विषयों के बारे में समाधान का परिणाम है और उसमें वहां न्यायिककल्प प्रक्रिया अन्तर्वलित है जहां समझौते के निबन्धनों का पुर्नविलोकन अथवा पुनरीक्षण किया जाना हो, । किन्तु उस मामले में अनुसृत विधायी प्रक्रिया वैसा किये जाने की अपेक्षा नहीं करती है। किसी भी दशा में ऐसे समझौते को रद्द करने के लिये, जो उच्च न्यायालय के विनिश्चय का आधार बन चुका है विधायी प्रक्रिया अपनाना अनुचित होगा। यहां तक कि यदि विधान किसी विनिश्चय के आधार को समाप्त कर सकता है तो इसे ऐसा किसी वर्ग के सामान्य अधिकारों को प्रवर्तित करके करना होगा न कि निगम के और इसके कर्मचारियों के बीच हुए दो विनिर्दिष्ट समझौतों को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के क्षेत्र से सादे तौर पर अपवर्जित करते हुए जिनके बारे में उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वे विधिमान्य और प्रवर्तनीय हैं। ऐसा मनमाना अपवर्जन अनुच्छेद 14 का भी अतिवर्तन कर सकता है।

---

[1] (1976) 2 एस० सी० आर० 347=[1976] 1 उम० नि० प० 1.

6. यदि संसद् ऐसे समझौते को रद्द करने के लिये आगे आती है जिसकी केन्द्रीय सरकार, इसकी अथवा इसके पुनरीक्षण की आवश्यकता पर विचार करने के पश्चात्, युक्तियुक्त रूप से परीक्षा कर सकती थी, यह प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि क्या इससे संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च) के अधीन प्रत्याभूत सम्पत्ति के मूल अधिकार का अतिक्रमण होता है क्योंकि बोनस पाने का अधिकार पारिश्रमिक का भाग है और इसके वंचन द्वारा न्यायिक रूप से मान्यताप्राप्त सम्पत्ति का अधिकार छीन लिया जाता है और संविधान के अनुच्छेद 19(6) के उपबन्धों द्वारा उसकी व्यावृत्ति नहीं होती है ? किसी अधिकार पर निर्बन्धन के अन्तर्गत बढ़े हुए पारिश्रमिक के अधिकार का जनसाधारण के हित में छीना जाना भी आ जाता है । इस मामले में जन साधारण के हित में किसी निर्बन्धन का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है । यह शुद्ध और सरल रूप से वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों के अधिकारों के वंचन का ऐसा मामला है जिसका किसी लोक हित से कोई प्रकट सम्बन्ध नहीं है ।

7. समझौते को रद्द करने वाले अधिनियम पर आपत्ति करने के मार्ग में पहली बाधा यह है कि 29 मई, 1976 को अधिसूचित 1976 वाला अधिनियम आपातकाल के दौरान पारित किया गया था । अतः यह निवेदन किया गया कि संविधान का अनुच्छेद 358 संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन उत्पन्न होने वाले किसी अधिकार को प्रभावी करने के विरुद्ध एक आत्यंतिक वर्जन है । इसके अतिरिक्त यह निवेदन किया गया है कि अधिनियम का प्रभाव 1 अप्रैल, 1975 के पश्चात् दायित्व को पूर्णतया समाप्त करना था जिससे कि 1 अप्रैल, 1975 के पश्चात् प्रवर्तित करने के लिये कुछ भी शेष न रहे।

8. यह अधिनियम इतना छोटा है कि उसमें तीन ही धाराएं हैं । औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2 के खण्ड (त) के साथ पठित धारा 13 के अधीन उस समझौते को परिभाषित करने के पश्चात् जो निगम और उसके कर्मकारों के बीच 24 जनवरी, 1974 को हुआ था, और उसके अतिरिक्त 6 फरवरी, 1974 वाले वैसे ही

समझौते को परिभाषित करने के पश्चात् धारा 3 में यह अधिकथित किया गया है कि —

> *"औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में किसी बात के होते हुए भी हर एक समझौते के उपबन्ध, जहां तक कि वे निगम के वर्ग 3 और वर्ग 4 के हर एक कर्मचारी को वार्षिक नकद बोनस के उसके वार्षिक वेतन के 15 प्रतिशत की दर पर संदाय से सम्बन्धित हैं, प्रवृत्त अथवा प्रभावी नहीं होंगे और उनके बारे में यह नहीं समझा जायेगा कि अप्रैल, 1975 के प्रथम दिन को और से वे प्रवृत्त अथवा प्रभावी हुए थे।"

9. सारतः अधिनियम का उद्देश्य निगम के वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों के पक्ष में हुए समझौते को मान्य ठहराने वाले कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के बल को समाप्त करना था। उस निर्णय के अधीन अधिकारों के बारे में यह कहा जा सकता था कि वे संविधान के अनुच्छेद 19 से पृथक् रूप से उत्पन्न हुए थे। मैं अपने विद्वान् बंधु भगवती से इस बाबत पूर्ण रूप से सहमत हूं कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय को प्रभावी करना वही बात नहीं है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन किसी अधिकार को प्रवर्तित करना। यह हो सकता है कि संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन कोई अधिकार निर्णय की प्रवर्तनीयता से सम्बद्ध हो जाता है। तो भी उन दोनों को अधिकारों के पृथक् संवर्गों के रूप में देखा जा सकता है। यदि निर्णय द्वारा प्रदत्त अधिकार को पृथक् रूप से अपास्त करना चाहा जाता है तो मेरी यह राय है कि अधिनियम की धारा 3 न्यायिक शक्ति पर अतिक्रमण करने के कारण अविधिमान्य होगी।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "Notwithstanding anything contained in the Industrial Disputes Act, 1947 the provisions of each of the settlement, in so far as they relate to the payment of an annual cash bonus to every Class III and Class IV employees of the corporation at the rate of fifteen per cent of his annual salary, shall not have any force or effect and shall not be deemed to have any force or effect on and from 1st day of April, 1975."

10. किन्तु मैं यह मत व्यक्त कर दूं कि यद्यपि अधिनियम का वास्तविक उद्देश्य कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा जारी किये गये परमादेश के परिणाम को हटाना हो सकता है तो भी उस धारा में इस उद्देश्य का बिल्कुल कोई उल्लेख नहीं किया गया है । कदाचित् यह इसलिये किया गया है क्योंकि किसी उच्च न्यायालय की अधिकारिता और इसके आदेशों की प्रभाविकता, अपनी शक्ति स्वयं संविधान के अनुच्छेद 226 से प्राप्त करते हैं। इनमें संसद् सामान्य तौर पर हस्तक्षेप नहीं करती है। यहां तक कि यदि अधिनियम की धारा 3 कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के आधार को, इसका उल्लेख किये बिना ही, ऐसा अधिनियमन करके समाप्त करना चाहती है जिससे विधि की प्रतीति हो, तो भी मेरा यह विचार है कि जहां, राज्य के विरुद्ध नागरिकों के अधिकारों का संबंध है हमें वह निर्वचन अपनाना चाहिये जो इन अधिकारों को कायम रखने वाला है । अतः इस निर्वचन के अनुसार मैं उन अधिकारों को अपनाना चाहूंगा जो उस निर्णय में समाविष्ट हैं और उच्च न्यायालय से परमादेश के रिट के आधार बने जिन्हें इस अप्रत्यक्ष ढंग से नहीं समाप्त किया जा सकता था ।

11. ऊपर वर्णित विचार के अलावा भी श्री आर०के० गर्ग ने प्रायिक तौर पर जोर देते हुए अन्य बातें प्रस्तुत की हैं, जिसने हमारे संविधान के आधारभूत ढांचे के भाग स्वरूप राज्य के नीति निदेशक तत्वों का अवलम्ब लिया है । बहरहाल, उसने यह निवेदन किया कि किसी उपबन्ध की युक्तियुक्तता का निर्णय करते समय राज्य की नीति के निदेशक तत्व का प्रयोग किया जा सकता है जैसा कि इस न्यायालय ने अयुक्तियुक्तता और विधिमान्यता की कसौटी के रूप में पुनः ऐसा किया है । श्री गर्ग ने संविधान के अनुच्छेद 43 के उपबन्धों का जोरदार रूप से अवलम्ब लिया है, जिसमें यह कहा गया है —

> "43. उपयुक्त विधान या आर्थिक संघटन द्वारा, अथवा और किसी दूसरे प्रकार से राज्य कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सब श्रमिकों को काम, निर्वाहमजूरी, शिष्ट-जीवन-स्तर तथा अवकाश का सम्पूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा तथा विशेष रूप से ग्रामों में कुटीर

उद्योगों को वैयक्तिक अथवा सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा ।"

12. उसने यह निवेदन किया है कि अनुच्छेद 43 राज्य पर कर्मकारों की निर्वाहमजूरी सुनिश्चित करने के लिये बाध्यता अधिरोपित करता है और वह देश का शासन करने में घोषित मूलभूत सिद्धांतों का भाग है । दूसरे शब्दों में, उसने व्यावहारिक तौर पर ऐसे मूल अधिकार को प्रवर्तित करने के लिये अनुच्छेद 43 का प्रयोग किया होता जिसे प्रवर्तित किया जा सकता है। मेरा यह विचार है कि हम इस सीमा तक नहीं जा सकने हैं क्योंकि यहां तक कि यदि राज्य की नीति के निदेशक तत्व, जिनमें वे बहुत महत्वपूर्ण तत्व भी सम्मिलित हैं, जो संविधान के अनुच्छेद 38 और 39 में हैं, ऐसा निदेश देते हैं जिसके अनुसार राज्य की मूलभूत नीतियां बनाई जानी चाहिए तो भी हम केन्द्रीय सरकार अथवा संसद् को उस दिशा में अग्रसर होने का निदेश नहीं दे सकते । अनुच्छेद 37 में यह कहा गया है कि वे 'किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होंगे किन्तु तो भी इनमें दिये हुए तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।' इस प्रकार भले ही वे न्यायालय द्वारा प्रत्यक्षतः प्रवर्तनीय नहीं हैं तो भी उन्हें निष्प्रभावी घोषित नहीं किया जा सकता है । उनमें मूलभूत तत्वों का जीवन और बल है । प्रत्यक्ष रूप से प्रवर्तित किये बिना उन्हें महत्व देने और न्यायालयों में प्रभावी करने का सर्वोत्तम ढंग युक्तियुक्तता के रूप में और इसलिये विधिमान्यता की कसौटी के रूप में उनका प्रयोग करना है जैसा कि हम करते रहे हैं । इस प्रकार यदि अनुच्छेद 38, 39 और 43 में के उद्देश्यों के प्रति अग्रसर होना वांछनीय है तो किसी विधिमान्य कारण की अवहेलना किये बिना मनमाने तौर पर मजदूरी की दरों में कोई कमी, जैसी कि इस मामले में की गई है, नहीं की जानी चाहिये । मेरी राय में यह निवेदन करना बहुत युक्तियुक्त है कि उस अध्युपाय को जो ऐसे समझौते के फायदे से कर्मकारों को वंचित करना चाहता है, और जिसके लिये केन्द्रीय सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम के उपबन्धों के अधीन अनुमति दी थी, ऐसे अधिनियम द्वारा निरर्थक नहीं बनाया जाना चाहिये जो किसी विशेष समझौते को विफल करने के लिये परिकल्पित है । यदि अधिनियम का यही प्रयोजन है, जैसा कि प्रकट रूप से यह है, तो उसके बारे में भलीभांति यह कहा

जा सकता है कि यह लोकहित के प्रतिकूल है और इसलिये संविधान के अनुच्छेद 19(6) द्वारा संरक्षित नहीं है ।

13. इसके अतिरिक्त मेरा यह विचार है कि **भारत संघ** बनाम **मेसर्स इन्डो अफगान एजेंसीज लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांत को भी इस मामले के उपबन्धों की युक्तियुक्तता का निर्णय करते समय विचार में लिया जा सकता है । उस मामले में पृष्ठ 335 यह कहा गया था :—

> "हमारे न्यायशास्त्र के अधीन सरकार इसके द्वारा किये गये निरूपण को इसके भावी आचरण के बारे में पूरा करने के दायित्व से मुक्त नहीं है और यह आवश्यकता अथवा समीचीनता के किसी अनिश्चित और अप्रकट आधार पर इसके द्वारा निष्ठापूर्वक किये गये किसी वचन को पूरा करने में असफल नहीं हो सकती है और न ही उन परिस्थितियों की एकपक्षीय मूल्यांकन के आधार पर जिनमें वह बाध्यता उत्पन्न हुई है, एक नागरिक के प्रति अपनी बाध्यता का निर्णायक होने का दावा कर सकती है।"

उस दशा में, सरकार के विरुद्ध साम्योचित सिद्धांतों का आश्रय लिया गया था । यह सत्य है कि प्रस्तुत मामले में यह संसद् के अधिनियम का एक उपबन्ध है और मात्र रूप से ऐसा सरकारी आदेश नहीं है जिसकी विधिमान्यता पर हमारे समक्ष आपत्ति की गई है । तो भी हम यह नहीं भूल सकते हैं कि वह अधिनियम उस समय की सरकार द्वारा की गई प्रस्थापना का परिणाम है, जिसने जीवन बीमा निगम अधिनियम की धारा 11(2) के अधीन अग्रसर होने के बजाय आपात उपबन्धों से संरक्षित संसदीय अधिनियम बनाने का विकल्प अपनाया । मेरा यह विचार है कि जिन सम्भाव्यताओं का वचन दिया गया था, किये गये अभ्यावेदनों, सरकार के बरताव और उससे उत्पन्न होने वाली स्थितियों को भी यह निर्णय करते समय विचार में लिया जाना चाहिये कि क्या सरकार द्वारा शुरू किया गया और संसद् द्वारा अधिनियमित विधान का कोई विशेष भाग युक्तियुक्त है ।

14. श्री गर्ग ने अधिनियम की धारा 3 पर भी जोरदार रूप से आपत्ति की है कि वह संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती

[1] (1968) 2 एस० सी० आर० 366.

है, जो आधार पिटीशनरों को आपात के दौरान उपलभ्य नहीं था । उसने यह अधिकथन किया है कि निगम को काफी लाभ होते रहे हैं जिससे कि निगम के हितों अथवा पालिसीधारकों के हितों को खतरे में डालने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता था । उसने यह निवेदन किया है कि वह अधिनियम जीवन बीमा निगम के निम्न स्तर के कर्मचारिवृन्द के विरुद्ध किये गये मनमाने विभेद के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं । मेरा यह विचार हैं कि इन दलीलों में बल है ।

15. मुझे इस बात का खेद है कि इस मामले में अपनी राय देने के लिए बहुत थोड़ा समय रह गया है इसलिए मैं तर्क और उन नजीरों को पूरी तरह से उपवर्णित और उद्धृत करने में समर्थ नहीं हो सका हूं जो मैं करना चाहता था । बहुत अधिक काम शेष रहता है । मुझे कल कई निर्णय देने हैं जो कि मेरे लिए इस न्यायालय के विनिश्चयों में न्यायाधीश के रूप में भाग लेने के प्राधिकार का प्रयोग करने के लिए यह अंतिम दिन होगा । किन्तु मैंने संक्षिप्त रूप में अपना विचार इंगित करना उचित समझा क्योंकि मुझे यह संदेह है कि क्या अनुच्छेद 31 (2क) संविधान के अनुच्छेद 31(2) का पूर्ण अवलम्ब लेने का प्रभावी उत्तर नहीं है ।

16. यह सत्य है कि बोनस प्राप्त करने का अधिकार जिसे केन्द्रीय सरकार ने अपने आदेशों और समझौते के अधीन अपने आचरण, दोनों के द्वारा ही सम्पत्ति के अधिकार को मान्य ठहराया है, तो भी चूंकि अर्जन को संविधान के अनुच्छेद 31(2क) में परिभाषित किया गया है मैं इस बात पर गंभीर रूप से संदेह करता हूं कि क्या अर्जन की परिभाषा की हमारे समक्ष वाले मामले के तथ्यों द्वारा वस्तुतः पूर्ति हो जाती है । वह उपबन्ध इस प्रकार है—

> "31(2क) जहां विधि किसी सम्पत्ति के स्वामित्व का या कब्जा रखने के अधिकार का हस्तांतरण राज्य या किसी ऐसे निगम को, जो कि राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन है, करने के लिए उपबन्ध नहीं करती है वहां, इस बात के होते हुए भी कि वह किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से वंचित करती है, उसकी बाबत यह न समझा जाएगा वह संपत्ति के अनिवार्य अर्जन या अधिग्रहण के लिए उपबन्ध करती है।"

17. किन्तु मुझे इस बारे में संदेह है कि मेरे विद्वान् बंधु भगवती जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं वह बिल्कुल सही है क्योंकि कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय में जिन अधिकारों के फायदों को मान्य ठहराया गया है, उन्हें अधिनियम की धारा 3 द्वारा मनमाने रूप से केवल विनिर्दिष्ट समझौतों के विरुद्ध लागू करके अप्रत्यक्ष रूप से नहीं छीना जा सकता था।

18. मेरा यह विचार है कि आक्षेपित अधिनियम की धारा 3 को संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) के उपबन्ध लागू होते हैं और संविधान के अनुच्छेद 19(6) द्वारा उसकी व्यावृत्ति नहीं होती है । इसे अनुच्छेद 14 भी लागू होता है। यदि अनुच्छेद 14 और 19 द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकार निलंबित नहीं किए जाते हैं, बल्कि केवल उनका प्रवर्तन निलंबित किया जाता है तो निलंबन का प्रभाव यथापूर्वस्थिति बनाए रखना है जो दृष्टिकोण मैंने **अपर जिला मजिस्ट्रेट, जबलपुर** बनाम **शिवकान्त शुक्ल**[1] वाले मामले में व्यक्त किया है । क्या इससे यह अभिप्रेत नहीं है कि अनुच्छेद 14 और 19 पर आधारित आपत्ति की विधिमान्यता ही आपात के दौरान निलंबित की गई थी । किन्तु इस रोक के हटा दिये जाने पर, संविधान का अनुच्छेद 14 और 19 जिसका प्रयोग निलंबित किया गया था, किसी भी ऐसे विधान को अविधिमान्य ठहराएगा जो अवैध है। दूसरे शब्दों में, अविधिमान्यता की घोषणा आपात के दौरान रोक दी गई थी । अनुच्छेद 358 और 359 (1क) दोनों ही यह उपबन्ध करते हैं कि जैसे ही आपात की उद्घोषणा प्रवर्तित होना बन्द हो जाती है तो निलंबन का प्रभाव 'उस विधि के ऐसा प्रभाव रखना बन्द किए जाने से पूर्व की गई अथवा किए जाने से लोपित बातों के सिवाय' समाप्त हो जाना चाहिए ।

19. की गई अथवा किए जाने से छोड़ दी गई बातों के बारे में निश्चित रूप से यह अभिप्रेत नहीं हो सकता कि समझौते के अधीन प्रदत्त अधिकारों को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया था जैसा कि महान्यायवादी ने सुझाव दिया है । ऐसा अभिनिर्धारित करने का अर्थ आपात के दौरान अविधिमान्यता के निलंबन को विधि की विधिमान्यता में संपरिवर्तित करना होगा । यदि विधि को विधिमान्य नहीं किया गया था, बलिक केवल उसका अविधिमान्यकरण निलंबित किया गया था, तो हमें निलंबन को कोई विस्तृत प्रभाव नहीं देना चाहिए । मेरा यह

---

[1] ए० आई० आर० 1976 एस० सी० 1207-1976 [3 उम० नि० प० 1.]

1978(2) eILR(PAT) SC 116

विचार है कि हमें 'की गई और किए जाने से छोड़ दी गई' बातों का निर्वचन बहुत संकुचित रूप से करना चाहिए। यदि ऐसा है तो इससे अभिप्रेत है कि उन समझौतों के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वे समाप्त किए जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उनके अधीन संदाय अस्थायी रूप से निलंबित कर दिए गए थे। प्रकट रूप से इससे यह अभिप्रेत है कि उनके अधीन आपात के दौरान किसी संदाय की मांग नहीं की जा सकती थी किन्तु जैसे ही आपात समाप्त हुआ, समझौते पुनः प्रवर्तित हो गए और जिस बात की आपात के दौरान मांग नहीं की जा सकती थी वह आपात की उस अवधि के लिए भी संदेय हो जाएगी जिसके लिए संदाय निलंबित किया गया था। अन्यथा अधिनियमिति का प्रभाव आपात समाप्त हो जाने के पश्चात् भी होगा। यह स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 358 और 359 (1क) के अभिव्यक्त उपबन्ध के प्रतिकूल होगा। दूसरे शब्दों में, विधिमान्य दावे स्वतः आपात द्वारा ही समाप्त नहीं किए जा सकते हैं। उन्हें केवल संविधान के अनुच्छेद 358 और 359(1क) के प्रवर्तन के दौरान पारित विधि द्वारा ही निलंबित किया जा सकता है।

20. ऊपर दिए गए कारणों से मैं उसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं जैसा कि मेरे विद्वान् बंधु भगवती पहुंचे हैं यद्यपि कदाचित उसके भिन्न आधार हैं। मैं अपने विद्वान् बंधु भगवती द्वारा किए गए अंतिम आदेश से सहमत हूं।

(न्यायाधिपति वी० आर० कृष्णअय्यर और डी० ए० देसाई की ओर से, न्यायाधिपति पी० एन० भगवती के मतानुसार।)

न्यायाधिपति भगवती—

ये रिट पिटीशन जीवन बीमा निगम (समझौते का उपान्तरण) अधिनियम, 1976 की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती देते हुए जीवन बीमा निगम के कर्मचारियों द्वारा फाइल किए गए हैं। यह विधान संसद् द्वारा आपात के दौरान उस समय अधिनियमित किया गया था जब कोई प्रभावी विचार-विनिमय अथवा विचार-विमर्श नहीं हो सकता था और इसने जीवन बीमा निगम के और इसके कर्मचारियों की चार भिन्न एसोसिएशनों (संगमों) के बीच हुए नकद बोनस के संदाय के लिए सत्यनिष्ठ और विमर्शित समझौते को निष्प्रभावी करना चाहा था। रिट पिटीशन में दी गई बहुत सी दलीलों को समझने लिए जीवन बीमा निगम (समझौते का उपान्तरण)

अधिनियम, 1976, जिसे इसमें इसके पश्चात् आक्षेपित अधिनियम कहा गया है, के तथ्यों को संक्षेप में पुनः वर्णित करना आवश्यक है।

22. जीवन बीमा निगम जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 के अधीन स्थापित कानूनी प्राधिकरण है और धारा 6 के अधीन जीवन बीमा निगम का यह सामान्य कर्त्तव्य है कि वह जीवन बीमा-कारबार चाहे वह भारत के अन्दर हो या भारत के बाहर, करे और इससे अपनी शक्तियों का इस प्रकार प्रयोग करना अपेक्षित है जिससे कि जीवन बीमा निगम का कारबार समुदाय के सर्वोत्तम हित में विकसित हो। जीवन बीमा अधिनियम, 1956 के उन बहुत से उपबन्धों के प्रति निर्देश करना आवश्यक नहीं है जो जीवन बीमा निगम अधिनियम की शक्तियों, कर्त्तव्यों और कृत्यों को परिभाषित करते हैं क्योंकि इन रिट पिटीशनों में हमारा उनसे कोई सरोकार नहीं है। धारा 49 के प्रति निर्देश करना पर्याप्त होगा जो जीवन बीमा निगम को विनियम बनाने की शक्ति प्रदत्त करती है। उस धारा की उपधारा (1) में यह उपबन्ध है कि जीवन बीमा निगम केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, 'ऐसे सभी विषयों का उपबन्ध करने के लिए जिनके लिए अधिनियम के उपबन्धों को प्रभावी करने के प्रयोजनार्थ उपबन्ध करना समीचीन है' ऐसे विनियम बना सकेगा जो अधिनियम से असंगत न हों और उपधारा (2) में यह अधिनियमित किया गया है कि विशेषतः और उपधारा (1) के अधीन प्रदत्त शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे विनियम निम्नलिखित का उपबन्ध कर सकेंगे—

> "(ख) निगम के कर्मचारियों और अभिकर्ताओं की भर्ती की पद्धति और ऐसे कर्मचारियों और अभिकर्ताओं की सेवा के निबन्धन और शर्तें,
>
> (खख) ऐसे व्यक्तियों की सेवा के निबन्धन और शर्तें जो धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन निगम के कर्मचारी बन गए हैं।"

जीवन बीमा निगम ने धारा 49 की उपधारा (2) के खण्डों (ख) और (खख) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से जीवन बीमा निगम (कर्मचारिवृन्द) विनियम, 1960 बनाए जिनमें अपने कर्मचारियों की सेवा के निबन्धनों और शर्तों को

1978(2) eILR(PAT) S

परिभाषित किया । इसमें केवल एक विनियम ऐसा है जो हमारे प्रयोजनार्थ सारवान है और वह विनियम 58 है, जो निम्नलिखित भाषा में है—

*"निगम ऐसे निदेशों के अधीन रहते हुए जैसे केन्द्रीय सरकार जारी करे, अपने कर्मचारियों को लाभ न होने पर भी बोनस में हिस्सा मंजूर कर सकेगी और उसका संदाय जिसमें बोनस के लिए पात्रता की शर्तें सम्मिलित हैं, अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर पर जारी किए गए अनुदेशों द्वारा विनियमित होगा ?;"

हमने विनियम 58 को इसके प्रस्तुत प्ररूप में प्रस्तुत किया हैं जो वह प्ररूप है जो कि सुसंगत कालावधि में आद्योपांत रहा है। यह विचारणीय विषय है कि जीवन बीमा निगम के और उसके कर्मचारियों के बीच बोनस के बारे हुए समझौते पर इस विनियम का क्या प्रभाव है।

23. यह प्रतीत होता है कि 1959 से ही जीवन बीमा निगम के और उसके कर्मचारियों के बीच समय-समय पर वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों की सेवा के निबन्धनों और शर्तों से सम्बन्धित विषयों के बारे में, जिनमें उनको संदेय बोनस सम्मिलित है, समझौते हुए थे। इनमें से तारीख, 20 जनवरी, 1974 वाला अन्तिम समझौता, तारीख 26 जून, 1972 वाले समझौते द्वारा यथाउपान्तरित, 31 मार्च, 1973 को समाप्त हो गया था। उसके पश्चात जीवन बीमा निगम कर्मचारियों के चार भिन्न संगमों ने वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों की ओर से वेतनमान भत्तों और सेवा के अन्य निबन्धनों और शर्तों के संशोधन के लिए अपने मांग पत्र प्रस्तुत किए। जीवन बीमा निगम ने उन संगमों से जुलाई, 1973 और जनवरी, 1974 के बीच बातचीत की जिसमें बहुत से विषयों के बारे में, जिनमें जीवन बीमा निगम की पालिसीधारकों और समुदाय के प्रति बाध्यता सम्मिलित है, निर्भीक और स्पष्ट विचार विनिमय हुआ और अन्ततोगत्वा इन वार्ताओं के परिणामस्वरूप जीवन बीमा निगम के और इन एसोसिएशनों के बीच

*अंग्रेज़ी में यह इस प्रकार है—

"The Corporation may, subject to such directions as the Central Government may issue, grant non-profit sharing bonus to its employees and the payment thereof, including conditions of eligibility for the bonus, shall be regulated by instruction issued by the Chairman from time to time."

24 जनवरी, 1974 को एक समझौता हुआ। वह समझौता सुलह कार्यवाहियों के अनुक्रम से अन्यथा होने के कारण औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 18 की उपधारा (1) के अधीन पक्षकारों पर आबद्धकर था और चूंकि चार संगमों के, जो समझौते के पक्षकार थे, अन्तर्गत सभी वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारी थे, अतः वह समझौता जीवन बीमा निगम पर और इसके वर्ग 3 और 4 के सभी कर्मचारियों पर आबद्धकर था। उस समझौते में सेवा के निबन्धनों और शर्तों से सम्बन्धित बहुत से विषयों के बारे में उपबन्ध किया गया था किन्तु हमारा सरोकार केवल खण्ड (8) से है, जिसमें बोनस के बारे में उपबन्ध किया गया था। उस खण्ड के निबन्धन निम्नलिखित हैं —

(i) लाभ न होने पर भी बोनस का हिस्सा दिया जाएगा। किन्तु निगम, ऐसे निदेशों के अधीन रहते हुए, जैसे केन्द्रीय सरकार समय समय पर जारी करे, वर्ग 3 और वर्ग 4 के अपने कर्मचारियों को किसी अन्य प्रकार का बोनस दे सकेगा।

(ii) वर्ग 3 और वर्ग 4 के सभी कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस वार्षिक वेतन के (अर्थात् मूल वेतन जिसमें विशेष वेतन यदि कोई हो और मंहगाई भत्ता तथा अतिरिक्त मंहगाई भत्ता सम्मिलित है,) जो किसी कर्मचारी द्वारा उस वित्तीय वर्ष की बाबत वस्तुतः लिया जाता है जिससे बोनस सम्बन्धित है, 15 प्रतिशत की दर पर संदत्त किया जाएगा।

(iii) जैसा कि इसमें उपबन्धित किया गया है, उसे छोड़ते हुए बोनस की ग्राह्यता और संदाय से सम्बद्ध सभी अन्य निबन्धन और शर्तें वे होंगी जैसी कि बोनस के बारे में तारीख 26 जून, 1972 वाले समझौते में अधिकथित की गई हैं।

खण्ड (2) को भी प्रत्युद्धृत करना आवश्यक है क्योंकि उसका पक्षकारों के बीच के संविवाद से कुछ सम्बन्ध है —

"समझौते की अवधि —

(1) यह समझौता 1 अप्रैल, 1973 से प्रभावी होगा और चार वर्ष की अवधि के लिए अर्थात् 1 अप्रैल, 1973 से 31 मार्च 1977 तक प्रभावी होगा।

1978(2) eILR(PAT) SC 110

(2) इस समझौते के निबन्धन निगम के बोर्ड और केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन के अधीन होंगे।

(3) यह समझौता कर्मकारों द्वारा उनकी सेवा के निबन्धनों और शर्तों के संशोधन के लिए उठाई गई सभी मांगों को पूरा करता है।

(4) इस समझौते द्वारा यथा अन्यथा उपबन्धित अथवा उपान्तरित को छोड़ते हुए कर्मकार भारतीय जीवन बीमा निगम विनियम, 1960 द्वारा उपवर्णित सेवा के निबन्धनों और शर्तों से और साथ ही समय-समय पर जारी किए गए प्रशासनिक अनुदेशों से भी शासित रहेंगे और वे उनके उपबन्धों के अधीन रहते हुए, जिसमें उसमें विनिर्दिष्ट कोई प्रवर्तन अवधि सम्मिलित है, उसके अधीन फायदों के हकदार होंगे।"

पक्षकारों के बीच यह सामान्य आधार है कि उस समझौते का जीवन बीमा निगम से और साथ ही केन्द्रीय सरकार ने भी अनुमोदन कर दिया था एवं कार्मिक विभाग के प्रधान (चीफ ऑफ पर्सोनल) ने तारीख 12 मार्च, 1974 वाले अपने परिपत्र द्वारा मण्डल (जोनल) और आंचलिक (डिवीजनल) प्रबन्धकों को यह सूचित किया गया था कि समझौते के बारे में केन्द्रीय सरकार का अनुमोदन मिल गया है इसलिए जीवन बीमा निगम को समझौते के बारे में निबन्धन लागू करने के लिए अग्रसर होना चाहिए। कार्यपालक निदेशक ने भी तारीख 29 मार्च, 1970 वाला एक परिपत्र जारी किया जिसमें समझौते के खण्ड 8(ii) के अधीन नकद बोनस के संदाय के बारे में प्रशासनिक अनुदेश थे। इन प्रशासनिक अनुदेशों में नकद बोनस के संदाय से सम्बन्धित बहुत से मामलों के बारे में निदेश उपवर्णित किए गए थे और इनमें से दो सारवान हैं। उनमें से एक यह है कि सेवा निवृत्ति अथवा मृत्यु की दशा में कर्मचारी अथवा उसके वारिस को संदेय बोनस की रकम अवधारित करने के प्रयोजनार्थ सेवा समाप्त होने की तारीख तक का वेतन विचार में लिया जाएगा। दूसरा यह था कि बोनस का संदाय अप्रैल मास के वेतन सहित किया जाएगा किन्तु सेवा निवृति अथवा मृत्यु की दशा में संदाय 'आकस्मिकता के शीघ्र पश्चात' किया जाएगा। इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि प्रथम दो वर्षों 1 अप्रैल, 1973 से 31 मार्च, 1974 और 1 अप्रैल, 1974 से 31 मार्च

1975 के लिए जीवन बीमा निगम ने तारीख 29 मार्च, 1974 वाले प्रशासनिक अनुदेशों के साथ पठित समझौते के खण्ड 8(ii) के उपबन्धों के अनुसार वर्ग 3 और वर्ग 4 के अपने कर्मचारियों को बोनस का संदाय किया था। किन्तु उसके पश्चात् 25 जून, 1975 को आपात की घोषणा कर दी गई थी और जीवन बीमा निगम के वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों के लिए परेशानी शुरू हो गई।

24. 25 सितम्बर, 1975 को भारत के राष्ट्रपति ने बोनस संदाय (संशोधन) अध्यादेश, 1975 प्रख्यापित किया जो तुरन्त प्रवृत्त हो गया। उसके पश्चात इस अध्यादेश को बोनस संदाय (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जो (अधिनियम) अध्यादेश की तारीख अर्थात् 25 सितम्बर, 1975 से भूतलक्षी रूप से प्रवृत्त किया गया था। इस संशोधित विधि ने औद्योगिक स्थापनों में बोनस के लिए कर्मचारियों के अधिकारों को पर्याप्त रूप से कम कर दिया। किन्तु जहां तक जीवन बीमा निगम के कर्मचारियों का सम्बन्ध था इसका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि बोनस संदाय अधिनियम वाली मूल अधिनियमिति धारा 32 के कारण जीवन बीमा निगम को लागू नहीं थी जिसने जीवन बीमा निगम को इसके प्रवर्तन से छूट दी थी। किन्तु केन्द्रीय सरकार ने यह विनिश्चय किया कि ऐसे स्थापनों के कर्मचारी जो बोनस संदाय अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते हैं, बोनस के संदाय के पात्र नहीं होंगे किन्तु उन्हें बोनस के स्थान पर ऐसा आनुग्रहिक नकद संदाय किया जाएगा जैसा कि हर एक मामले में मजदूरी स्तर, वित्तीय परिस्थितियों आदि पर विचार करते हुए सरकार द्वारा अवधारित किया जाए और ऐसा संदाय 10 प्रतिशत के अधिकतम के अधीन होगा और इस विनिश्चय के अनुसरण में जीवन बीमा निगम को वित्त मंत्रालय ने यह सलाह दी कि बोनस का इसके अतिरिक्त कोई संदाय कर्मचारियों को 'उसे सरकार द्वारा स्वीकृत कराए बिना' न किया जाए। इस पर जीवन बीमा निगम ने तारीख 26 सितम्बर, 1975 वाले अपने परिपत्र द्वारा अपने सभी कार्यालयों को यह सूचना दी कि चूंकि तारीख 25 सितम्बर, 1975 वाले बोनस अध्यादेश को ध्यान में रखते हुए बोनस के संदाय के प्रश्न का पुनर्विलोकन किया जा रहा है अतः आगे अनुदेश होने तक विद्यमान उपबन्धों के अधीन कर्मचारियों को बोनस का कोई संदाय न किया जाए। जीवन बीमा निगम द्वारा अपनाए गए इस रुख के विरुद्ध अखिल भारतीय बीमा कर्मचारी संगम (आल इण्डिय

इंश्योरेंस एम्पलाइज एसोसिएशन) ने प्रतिरोध किया और यह संकेत किया कि जीवन बीमा निगम समझौते के निबन्धनों के अनुसार बोनस संदाय करने के लिए आबद्ध है और बोनस का संदाय न करने का आदेश स्पष्टतया अवैध और अन्यायोचित है। जीवन बीमा निगम ने यह बात स्वीकार की कि बोनस का संदाय समझौते के अन्तर्गत था किन्तु यह दलील दी कि यह केन्द्रीय सरकार के ऐसे निदेशों के अधीन था जिसमें जीवन बीमा निगम को यह सलाह दी गई थी कि वह उनके (सरकार के) विनिर्दिष्ट अनुमोदन के बिना बोनस का कोई संदाय न करे, अतः जीवन बीमा निगम द्वारा कर्मचारियों को बोनस का संदाय न किया जाना न्यायोचित था। जीवन बीमा निगम ने यह रुख अखिल भारतीय बीमा कर्मचारी संगम को लिखे गए तारीख 7 फरवरी, 1976 वाले अपने पत्र में अपनाया था और उसके बाद तारीख 22 मार्च, 1971 वाला एक परिपत्र भेजा गया जिसमें जीवन बीमा निगम के सभी कार्यालयों को बोनस के तौर पर संदाय न करने का अनुदेश दिया गया था।

25. इसके पश्चात अखिल भारतीय बीमा कर्मचारी संगम और कुछ अन्य व्यक्तियों ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में 1976 का रिट पिटीशन सं० 371 परमादेश और प्रतिषेध के रिट के लिए फाइल किया जिसमें यह प्रार्थना की गई कि जीवन बीमा निगम को यह निदेश दिया जाए कि वह तारीख 29 मार्च, 1974 वाले प्रशासनिक अनुदेशों के साथ पठित तारीख 24 जनवरी, 1974 वाले समझौते के निबन्धनों के अनुसार कार्य करे और तारीख 26 सितम्बर, 1975, 7 फरवरी, 1976 और 22 मार्च, 1976 वाले परिपत्रों को अभिखण्डित अथवा रद्द करे। 1976 के अप्रैल मास के वेतन सहित वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को नकद बोनस का संदाय, जैसाकि प्रशासनिक अनुदेशों के साथ पठित समझौते द्वारा उपबन्धित किया गया है, करने से इन्कार न करे। जीवन बीमा निगम ने रिट पिटीशन का बहुत से आधारों पर प्रतिरोध किया जिनके प्रति निर्देश करना आवश्यक नहीं है क्योंकि हमारा सरोकार रिट पिटीशन का निपटारा करने वाले कलकत्ता उच्च न्यायलय के आदेश की शुद्धता से नहीं है। यह कथन करना पर्याप्त होगा और यह हमारे प्रयोजनार्थ सारवान है कि तारीख 21 मई, 1976 वाले निर्णय द्वारा कलकत्ता उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने रिट पिटीशन मंजूर किया था और रिट पिटीशन में यथा प्रार्थित परमादेश

और प्रतिषेध का रिट जारी किया था। जीवन बीमा निगम ने विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध लैटर्स पेटेंट अपील की। किन्तु इसी बीच आक्षेपित अधिनियम पहले ही प्रवृत्त हो चुका था और इसलिए जीवन बीमा निगम की ओर से खण्ड न्यायपीठ के समक्ष यह कथन किया गया कि अपील में अग्रसर होने की कोई आवश्यकता नहीं थी और इसलिए खण्ड न्यायपीठ ने अपील में कोई आदेश नहीं किया। विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय यथावत् रहा, उसका प्रभाव क्या है, वह ऐसा विषय है जिस पर हम सम्प्रति विचार करेंगे।

26. तारीख 29 मई, 1976 को संसद ने आक्षेपित अधिनियम अधिनियमित किया जिसमें अन्य बातों के साथ साथ जीवन बीमा निगम और उसके कर्मचारियों के बीच हुए तारीख 24 जनवरी, 1974 वाले समझौते के उपान्तरण का उपबन्ध किया गया था। आक्षेपित अधिनियम एक बहुत ही छोटा कानून था जिसमें केवल तीन धाराएं थीं। धारा 1 में आक्षेपित अधिनियम का संक्षिप्त नाम दिया गया था, धारा 2 में परिभाषाएं थीं और धारा 3 में, जो कि प्रवर्तनीय धारा थी, निम्नलिखित उपबन्ध था —

> *"औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में किसी बात के होते हुए भी हर एक समझौते के उपबन्ध, जहां तक कि वे निगम के वर्ग 3 और वर्ग 4 के हर एक कर्मचारी को वार्षिक नकद बोनस उसके वार्षिक वेतन के 15 प्रतिशत की दर पर संदाय से सम्बन्धित हैं, प्रवृत्त अथवा प्रभावी नहीं होंगे और उनके बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि अप्रैल, 1975 के प्रथम दिन को और से वे प्रवृत्त अथवा प्रभावी हुए थे।"

चूंकि आक्षेपित अधिनियम ने तारीख 24 जनवरी, 1974 वाले समस्त समझौते को निरर्थक नहीं किया था, बल्कि मात्र रूप से समझौते के उपबन्धों

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "Notwtihstanding anything contained in the Industrail Disputes Act, 1947, the provisions of the settlement in so far as they relate to the payment of an annual cash bonus to every Class III and Class IV empioyees of the Corporation at the rate of fifteen percent, of his annual salary, shall not have any force or effect and shall not be deemed to have had any force or effect on and from the 1st day of April, 1975."

को वहां तक बल और प्रभावहीन बना दिया था जहां तक कि उनका सम्बन्ध वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस के संदाय से था और वह भी उस तारीख से नहीं जब समझौता प्रवर्तित हुआ बल्कि तारीख 1 अप्रैल, 1975 से, यह कहा गया है कि समझौते के उपबन्धों को उपान्तरित करने वाला कानून है। आक्षेपित अधिनियम का सहज और असंदिग्ध प्रभाव वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस से वंचित करना था जिसके वे समझौते के खण्ड 8(ii) के अधीन 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले और 1 अप्रैल, 1976 से 31 मार्च, 1977 वाले वर्षों के लिए हकदार थे और इसलिए दो संगमों ने अपने पदधारियों सहित प्रस्तुत रिट पिटीशन आक्षेपित अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती देते हुए फाइल किया।

27. आक्षेपित अधिनियम की सांविधानिकता पर पिटीशनरों की ओर से जो आपत्ति की गई थी, उसके दो आधार थे, जो निम्नलिखित हैं—

"क. समझौते के खण्ड 8(ii) के अधीन 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले और 1 अप्रैल 1976 से 31 मार्च, 1977 वाले वर्षों के लिए वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों का नकद वार्षिक बोनस का अधिकार सम्पत्ति थी और चूंकि आक्षेपित अधिनियम ने इस सम्पत्ति का किसी प्रतिकर के संदाय के बिना आवश्यक अर्जन का उपबन्ध किया था, अतः वह आक्षेपित अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 31(2) का अतिक्रमण करता है और इसलिए बातिल और शून्य है।

ख. आक्षेपित अधिनियम ने 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले और 1 अप्रैल, 1976 से 31 मार्च, 1977 वाले वर्षों के लिए वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस के अधिकार से वंचित किया जो (अधिकार) उनमें समझौते के खण्ड 8(ii) के अधीन निहित किया गया था और इसलिए अनुच्छेद 19(1)(च) के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिलंघन हुआ था और चूंकि वार्षिक नकद बोनस के अधिकार से, जिसे सामूहिक बातचीत के परिणामस्वरूप, और जीवन बीमा निगम की और केन्द्रीय सरकार की ओर से पूर्ण और परिपक्व विचार-विमर्श

> सहित पालिसीधारकों और समुदाय के हितों को ध्यान में रखने के पश्चात् समझौते के अधीन सुनिश्चित किया गया था और जो संविधान के अनुच्छेद 43 में परिकल्पित निर्वाह-मजूरी के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए था, आक्षेपित अधिनियम की अनुच्छेद 19(5) द्वारा व्यावृत्ति नहीं हुई थी और इसलिए यह अविधिमान्य घोषित किए जाने योग्य है।"

हम इन आधारों के बारे में अपने आदेश में विचार करेंगे जिन्हें हमने उस में उपवर्णित किया है तो भी हम यह संकेत कर दें कि यदि कोई भी आधार सफल होता है तो अन्य पर विचार करना अनावश्यक होगा।

28. किन्तु इससे आगे बढ़ने से पूर्व इस प्रक्रम पर पिटीशनर की एक अन्य दलील के प्रति निर्देश करना सुविधाजनक होगा जो 1976 के रिट पिटीशन सं० 371 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय पर आधारित है। वह दलील यह थी कि चूंकि कलकत्ता उच्च न्यायालय ने तारीख 21 मई, 1976 वाले अपने निर्णय द्वारा परमादेश का एक रिट जारी किया जिसमें जीवन बीमा निगम को 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिए वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को अप्रैल, 1976 के मास के उनके वेतन सहित वार्षिक नकद बोनस, जैसा कि समझौते में उपबन्ध किया गया है, संदाय किया जाए और यह निर्णय इसके विरुद्ध प्रस्तुत की गई लैटर्स पेंटेंट अपील के वापिस लिए जाने के कारण अन्तिम हो गया था अतः जीवन बीमा निगम परमादेश के रिट का पालन करने और 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिए समझौते के खण्ड 8(ii) के निबन्धनों के अनुसार वार्षिक नकद बोनस का संदाय करने के लिए आबद्ध था। पिटीशनरों ने यह कहा कि निस्सन्देह रूप से यह बात सत्य है कि आक्षेपित अधिनियम, यदि यह विधिमान्य है, तो समझौते के खण्ड 8(ii) पर प्रहार करता है और इसे 1 अप्रैल, 1975 से निष्प्रभावी और बलहीन बना देता है किन्तु इसका प्रभाव जीवन बीमा निगम को परमादेश के रिट की बाध्यता को पूरा करने से मुक्त करने वाला नहीं है। पिटीशनरों के अनुसार आक्षेपित अधिनियम में ऐसी कोई बात नहीं थी जिसने कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के प्रभाव को अथवा जीवन बीमा निगम के विरुद्ध जारी किए गए परमादेश के रिट के आबद्धकर स्वरूप को निरर्थक नहीं बनाया था। पिटीशनरों की

इस दलील पर गम्भीर विचार किया जाना अपेक्षित है और हम इसे स्वीकार करना चाहते हैं।

29. इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि उद्देश्यों और कारणों के कथन में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के प्रति कोई निर्देश नहीं किया गया था और न ही आक्षेपित अधिनियम की धारा 3 में न्यायालय के निर्णय के प्रति निर्देश करने वाला कोई अध्यारोही खण्ड था। संसद् का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित नहीं किया गया है कि कलकत्ता उच्च न्यायालय ने पहले ही परमादेश का रिट जारी कर दिया था जिसमें जीवन बीमा निगम को 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिए बोनस की रकम का संदाय करने का समादेश दिया गया था। वस्तुतः यह बात दुर्भाग्यपूर्ण है कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय पर कोई ध्यान ही नहीं दिया गया और आक्षेपित अधिनियम उस निर्णय की जानकारी न होने के कारण पारित किया गया था। आक्षेपित अधिनियम की धारा 3 में यह उपबन्ध है कि समझौते के उपबन्ध, जहां तक कि वे वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों का, वार्षिक नकद बोनस के संदाय से सम्बन्धित है, कोई बल अथवा प्रभाव नहीं रखेंगे और उनके बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि उनका 1 अप्रैल, 1975 से कोई बल अथवा प्रभाव था। किन्तु कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा जारी किया गया परमादेश का रिट, जिसमें जीवन बीमा निगम को 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिए बोनस की रकम का संदाय करने का निदेश दिया गया था, आक्षेपित अधिनियम द्वारा अछूता छोड़ दिया गया था। जहां तक वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों का 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिए वार्षिक नकद बोनस के अधिकार का सम्बन्ध है, यह निर्णय में निश्चित हो गया था और उसके पश्चात् वे निर्णय द्वारा मंजूर किए गए परमादेश के रिट को न कि समझौते के अधीन वार्षिक नकद बोनस के किसी अधिकार को प्रवर्तित करने के हकदार हो गए थे। आक्षेपित अधिनियम के निर्णय के अधीन इस अधिकार को छीनना नहीं चाहा है। वह निर्णय अस्तित्व में बना रहा और जीवन बीमा निगम 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिए परमादेश के रिट का अनुपालन करते हुए वर्ग 3 और वर्ग 3 के कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस का संदाय

करने के लिए आबद्ध था। जीवन बीमा निगम ने यह गलती की कि इसने लैटर्स पेटेंट अपील वापिस ले ली और विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को अन्तिम बन जाने दिया। जिस समय तक लैटर्स पेटेंट अपील सुनवाई के लिए प्रस्तुत हुई तब तक आक्षेपित अधिनियम पहले ही प्रवृत्त हो चुका था और इसलिए जीवन बीमा निगम लैटर्स पेटेंट अपील में सफलता-पूर्वक यह दलील दे सकता था कि चूंकि समझौता, जहां तक कि इसमें वार्षिक नकद बोनस के संदाय का उपबन्ध किया गया था, आक्षेपित अधिनियम द्वारा 1 अप्रैल, 1975 से पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया था, वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारी 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिए वार्षिक नकद बोनस के हकदार नहीं थे और इसलिए जीवन बीमा निगम को ऐसे बोनस का संदाय करने का निदेश देने वाला परमादेश का रिट जारी नहीं किया जा सकता था। यदि ऐसी दलील दी गई होती तो इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि आक्षेपित अधिनियम की विधिमान्यता को किसी सांविधानिक चुनौती के अधीन रहते हुए, उसके द्वारा एकल न्यायाधीश का निर्णय उलट दिया गया होता और रिट पिटीशन खारिज कर दिया गया होता। किन्तु किसी अस्पष्ट कारणवश, जिनको समझना कठिन है, जीवन बीमा निगम ने लैटर्स पेटेंट अपील पर जोर नहीं दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि परमादेश का रिट, देने वाला विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय अन्तिम और पक्षकारों पर आबद्धकर हो गया। इन परिस्थितियों में यह बात समझना कठिन है कि जीवन बीमा निगम किस प्रकार यह दावा कर सकता था कि वह आक्षेपित अधिनियम का अवलम्ब लेते हुए परमादेश के रिट को पूरा करने के लिए निर्णय द्वारा अधिरोपित बाध्यता से मुक्त है।

30. जीवन बीमा निगम ने **श्री पृथ्वी राज कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम भड़ौच बरो म्यूनिसिपैलिटी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का, अपनी इस दलील के समर्थ में जोर दार रूप से अवलम्ब लिया है कि समझौता, जहां तक कि उसमें वार्षिक नकद बोनस के संदाय का उपबन्ध किया गया था, आक्षेपित अधिनियम द्वारा 1 अप्रैल, 1975 से निष्फल कर दिया गया था, वह आधार जिस पर वह निर्णय अग्रसर हुआ मूलभूत रूप से परिवर्तित कर दिया गया था और उसने उस निर्णय को निष्प्रभावी बना दिया था और वह पक्षकारों पर आबद्धकर नहीं

[1] (1970) 1 एस० सी० आर० 388-[1970] 2 उम० नि० प० 302.

था। हमारा यह विचार है कि इस विनिश्चय में ऐसी कोई विस्तृत प्रस्थापना अधिकथित नहीं की गई है जैसी कि जीवन बीमा निगम के लिए और उसकी ओर से दलील दी गई है। इस सम्बन्ध में यह नहीं कहा गया है कि जब किसी तथ्यात्मक अथवा विधिक स्थिति में भूतलक्षी विधान द्वारा परिवर्तन कर दिया जाता है तो परिवर्तन किए जाने से पूर्व ऐसी तथ्यात्मक अथवा विधिक स्थिति के आधार पर न्यायालय द्वारा दिया गया न्यायिक विनिश्चय किसी भी गुंजाइश के बिना एकदम निष्प्रभावी हो जाता है और पक्षकारों पर आबद्धकर नहीं रहता। यह सत्य है कि इस विनिश्चय में कतिपय ऐसी मताभिव्यक्तियां है जो यह सुझाव देती हैं कि न्यायालय का विनिश्चय तब आबद्धकर नहीं रह जाएगा जब वे परिस्थितियां जिन पर यह आधारित है मूलभूत रूप से इस प्रकार प्रवर्तित कर दी जाती है कि वह विनिश्चय परिवर्तित परिस्थितियों में नहीं दिया जा सकता था। किन्तु इन मताभिव्यक्तियों को उस प्रश्न को ध्यान में रखते हुए समझना होगा जो उस मामले में विचारार्थ उत्पन्न हुआ था। उसमें गुजरात इम्पोजिशन आफ टैक्सेज बाई म्यूनिसिपैलिटीज (वैलिडेशन) ऐक्ट, 1963 की विधिमान्यता पर पिटीशनर की ओर से आपत्ति की गई थी। विधिमान्यकरण अधिनियम को इसलिए अधिनियमित करना पड़ा था क्योंकि **पटेल गोरधनदास हरगोविन्ददास** बनाम **म्युनिसिपल कमिश्नर, अहमदाबाद**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि चूंकि बाम्बे म्यूनिसिपैलिटी बरोज ऐक्ट, 1925 की धारा 73 ने नगरपालिका को भवनों और भूमियों पर रेट उद्गृहीत करने के लिए अनुज्ञात किया था और 'रेट' पद वार्षिक भाटक मूल के आधार पर अधिरोपण तक सीमित है अतः नगर पालिका द्वारा भूमियों और भवनों पर पूंजीगत मूल्य के आधार पर उदगृहीत कर अविधिमान्य था। विधिमान्यकरण अधिनियम की धारा 3 में यह उपबन्ध किया गया था कि किसी न्यायालय अथवा अधिकरण अथवा किसी अन्य प्राधिकरण के किसी निर्णय, डिक्री अथवा आदेश में किसी बात के होते हुए भी, नगरपालिका द्वारा किसी भवन अथवा भूमि के पूंजीगत मूल्य के आधार पर निर्धारित अथवा तात्पर्यित रूप से निर्धारित कोई कर और विधिमान्यकरण अधिनियम के प्रारम्भ होने से पूर्व किसी समय नगरपालिका द्वारा अधिरोपित, संगृहीत अथवा वसूल किए गए किसी कर के बारे में यह समझा जाएगा

[1] (1964) 2 एस० सी० आर० 608.

कि वह अविधिमान्य रूप से निर्धारित, अधिरोपित, संगृहीत अथवा वसूल किया गया था और इस प्रकार निर्धारित कर का अधिरोपण, संग्रहण अथवा वसूली विधिमान्य होगी और उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह सदैव ही विधिमान्य रही है और उसे मात्र इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि भवन अथवा भूमि के पूंजीगत मूल्य के आधार पर विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं था और तदनुसार विधिमान्यकरण अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व इस प्रकार निर्धारित और ऐसे प्रारम्भ होने के पूर्व की किसी अवधि के लिए उद्ग्रहणीय कोई कर किन्तु जिसे ऐसे प्रारम्भ के पूर्व संगृहीत अथवा वसूल नहीं किया गया है, सुसंगत नगरपालिक विधि के अनुसार संगृहीत अथवा वसूल किया जा सकेगा। यह विचारणीय है कि आक्षेपित अधिनियम की धारा 3 द्वारा विधानमण्डल ने भवन अथवा भूमि के पूंजीगत मूल्य के आधार पर भूतलक्षी रूप से कर अधिरोपित किया था और यदि वह कर पहले ही उस आधार पर उद्गृहीत और संगृहीत किया गया था तो उसने न्यायालय द्वारा उसके बारे में यह घोषित किए जाने के बावजूद कि वह 'रेट' है, अतः उसका उद्ग्रहण अक्षम है उस कर के अधिरोपण, उद्ग्रहण, संग्रहण और वसूली को विधिमान्य बना दिया था, विधानमण्डल के लिए यह करना अनुज्ञेय था क्योंकि ऐसा करते समय विधानमण्डल ने 'रेट' शब्द के निर्वचन के आधार पर इस न्यायालय के विनिश्चय को उलटना नहीं चाहा है बल्कि भवन अथवा भूमि पर पूंजीगत मूल्य के आधार पर कर के अधिरोपण का उपबन्ध करते हुए उस आधार पर कर के अधिरोपण, उद्ग्रहण, संग्रहण और वसूली को विधिमान्य बनाया। अतः असंशोधित विधि के आधार पर कर उद्ग्रहण को अक्षम अभिनिर्धारित करने वाला इस न्यायालय का विनिश्चय असंगत हो गया और वह यथाभूतलक्षी रूप से संशोधित विधि के अधीन पूंजीगत मूल्य के आधार पर कर के निर्धारित, संगृहीत और वसूल किए जाने के मार्ग में आड़े नहीं आ सकता था। यही कारण है कि इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विधिमान्यकरण अधिनियम पूंजीगत मूल्य के आधार पर भवन अथवा भूमि पर कर के अधिरोपण, उद्ग्रहण, संग्रहण अथवा वसूली को विधिमान्य बनाने के लिए प्रभावी था। यह मझना कठिन है कि विधिमान्यकरण कानून के संदर्भ में दिया गया यह विनिश्चय जीवन बीमा निगम के लिए किस प्रकार सहायक हो सकता हैं। इस मामले में कलकत्ता उच्च न्यायलय द्वारा दिया गया निर्णय,

जिसका पिटीशनरों ने अवलम्ब लिया है, ऐसा मात्र घोषणात्मक निर्णय नहीं है जिसके द्वारा किसी महसूल अथवा कर को अविधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया है जिससे कि विधिमान्यकरण कानून, निर्णय में जिस त्रुटि का संकेत किया है उसे विधि का संशोधन करके भूतलक्षी रूप से ठीक कर सकता है और ऐसे महसूल अथवा कर को विधिमान्य बना सकता है। किन्तु यह ऐसा निर्णय है जो समझौते के अधीन पिटीशनरों के वार्षिक नकद बोनस के अधिकार को परमादेश का रिट जारी करते हुए जीवन बीमा निगम को ऐसे बोनस की रकम का संदाय करने का निदेश देकर प्रभावी बनाता है। यदि तथ्यात्मक विधिक स्थिति के भूतलक्षी रूप से परिवर्तित किए जाने के कारण निर्णय को गलत करार दे दिया जाता है तो उसका उपचार अपील अथवा पुनर्विलोकन है किन्तु जब तक कि निर्णय विधिमान्य है, उसकी उपेक्षा करते हुए इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है और जीवन बीमा निगम द्वारा इसका पालन किया ही जाना चाहिए। अतः हमारा यह दृष्टिकोण है कि किसी भी दशा में चाहे आक्षेपित अधिनियम सांविधानिक रूप से विधिमान्य है या नहीं, जीवन बीमा निगम कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए परमादेश के रिट का पालन करने के लिए और वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 के लिए वार्षिक नकद बोनस का संदाय करने के लिए आबद्ध है। अब हम सांविधानिक चुनौती के आधारों के प्रति निर्देश करेंगे।

आधार 'क' के बारे में

31. इस आधार में यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या आक्षेपित अधिनियम अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का अतिक्रमण करता है। इस खण्ड में सम्पत्ति के आवश्यक अर्जन अथवा अधिग्रहण के विरुद्ध सुरक्षोपायों का उपबन्ध ऐसी शर्तें अभिकथित करते हुए किया गया है जिनके अधीन रहते हुए ही एकमात्र रूप से सम्पत्ति का आवश्यक रूप से अर्जन अथवा अधिग्रहण किया जा सकता है और आक्षेपित अधिनियम के अधिनियमित किए जाने की तारीख को इसके निबन्धन निम्नलिखित थे--

> "कोई सम्पत्ति सार्वजनिक प्रयोजन के लिये ही और ऐसी विधि के प्राधिकार से अनिवार्यतः अर्जित या अभिगृहीत की जायगी जो सम्पत्ति के अर्जन या अधिग्रहण का, ऐसी राशि के बदले जो

उस विधि द्वारा नियत की जाए या जो ऐसे सिद्धांतों के अनुसार अवधारित की जाए, और ऐसी रीति से दी जाए जो उस विधि में विनिर्दिष्ट हो, उपबन्ध करती है और ऐसी किसी विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जाएगी कि इस प्रकार नियत या अवधारित राशि पर्याप्त नहीं है अथवा ऐसी पूरी राशि या उसका कोई भाग नकद न दिया जा कर अन्यथा दिया जाना है।"

इस रूप में अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) को संविधान (25वां संशोधन) अधिनियम, 1972 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था और इस संशोधित अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 31 में खण्ड (2-क) और (2-ख) भी जोड़े गए थे और वे इस प्रकार हैं—

"(2-क) जहां विधि किसी सम्पत्ति के स्वामित्व का या कब्जा रखने के अधिकार का हस्तांतरण राज्य या किसी ऐसे निगम को, जो की राज्य के स्वामित्व या नियन्त्रण के अधीन है, करने के लिए उपबन्ध नहीं करती है वहां, इस बात के होते हुए भी कि वह किसी व्यक्ति को उसकी सम्पति से वंचित करती है, उसकी बाबत यह न समझा जाएगा कि वह सम्पत्ति अनिवार्य अर्जन या अधिग्रहण के लिये उपबन्ध करती है।

(2-ख) अनुच्छेद 19 के खण्ड (1) के उपबन्ध (च) की कोई बात किसी ऐसी विधि पर प्रभाव नहीं डालेगी जो खण्ड (2) में निर्दिष्ट है।"

पिटीशनरों का तर्क यह था कि समझौते के अधीन 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 और 1 अप्रैल, 1976 से 31 मार्च, 1977 वाले वर्षों के लिये वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों का 'वार्षिक नकद बोनस' का अधिकार सम्पत्ति थी और चूंकि आक्षेपित अधिनियम में इस अधिकार के स्वामित्व का जीवन बीमा निगम को अन्तरित किए जाने का उपबन्ध किया था जो (निगम) अनुच्छेद 12 के अर्थ के भीतर 'राज्य' था अतः यह ऐसी विधि थी जो अनुच्छेद 31 के खण्ड (2-क) के अधीन यथाअनुध्यात सम्पति के आवश्यक अर्जन का उपबन्ध करती है अतः इसके लिये यह अपेक्षित था कि वह अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) की अपेक्षाओं को पूरा करे। पिटीशनरों ने यह कहा कि 'वार्षिक नकद बोनस' के अधिकार का आवश्यक अर्जन, जिसे

आक्षेपित अधिनियम द्वारा प्रभावी करना चाहा गया है, सार्वजनिक प्रयोजन से समर्थित नहीं है और न ही आक्षेपित अधिनियम में ऐसे किसी मामले के लिये किसी प्रतिकर के संदाय का उपबन्ध किया गया है और इसलिये आक्षेपित अधिनियम अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का उल्लंघन करता है और यह शून्य है।

32. इस दलील के आधार पर विचारार्थ जो पहला प्रश्न उत्पन्न होता है यह है कि क्या समझौते के अधीन 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले और 1 अप्रैल, 1976 से 31 मार्च, 1977 वाले वर्ष के लिये समझौते के अधीन वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों का 'वार्षिक नकद बोनस' का अधिकार सम्पत्ति है जिसे अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का प्रतिषेध लागू होता है। जीवन बीमा निगम ने यह निवेदन किया कि उस तारीख को जब आक्षेपित अधिनियम अधिनियमित किया गया वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को या तो 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष के लिये अथवा 1 अप्रैल, 1976 से 31 मार्च, 1977 वाले वर्ष के लिए 'वार्षिक नकद' बोनस, प्राप्त करने का कोई आत्यांतिक अधिकार प्राप्त नहीं था और इसलिये ऐसी कोई सम्पत्ति नहीं थी जिसे आक्षेपित अधिनियम के अधीन आवश्यक रूप से अर्जित किया जा सकता था। जीवन बीमा निगम का तर्क यह था कि जीवन बीमा निगम (कर्मचारीवृन्द) विनियम, 1960 में, जिसने अन्य बातों के साथ-साथ वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों की सेवा के निबन्धन और शर्तें अधिकथित की, विनियम 58 को छोड़ते हुए बोनस के संदाय का कोई उपबन्ध नहीं था और चूंकि इस विनियम के अधीन जीवन बीमा निगम द्वारा वार्षिक नकद बोनस का दिया जाना ऐसे निदेशों के अधीन था जैसे कि केन्द्रीय सरकार जारी करे अत: वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों के 'वार्षिक नकद' बोनस, प्राप्त करने के अधिकार के बारे में यह नहीं कहा जा सकता था कि वह आत्यंतिक अधिकार था। यह ऐसा अधिकार था जिसे ऐसे किन्हीं निदेशों द्वारा निष्फल बनाया जा सकता था जो केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए जाएं और वस्तुत: केन्द्रीय सरकार ने जीवन बीमा निगम को अपने कर्मचारियों को बोनस का, 'उसे सरकार से स्वीकृत कराए बिना' संदाय न करने का निदेश जारी किया था और परिणामस्वरूप वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को बोनस का दावा करने का कोई आत्यंतिक अधिकार प्राप्त नहीं था। जीवन बीमा निगम के अनुसार उसका

समझौते के खण्ड 8(i) और 8(ii) के समुचित निर्वचन के आधार पर भी वही परिणाम निकला क्योंकि इन दो खण्डों को समुचित रूप से समझने पर यह स्पष्ट हो गया था कि खण्ड 8(i) के आधार पर खण्ड (ii) के अधीन वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को संदाय वार्षिक नकद बोनस ऐसे विदेशों के अध्यधीन था जैसे केन्द्रीय सरकार समय-समय जारी करे और केन्द्रीय सरकार द्वारा यह निदेश दे दिए जाने पर कि कर्मचारियों को बोनस का आगे संदाय न किया जाए, वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारी जीवन बीमा निगम से वार्षिक नकद बोनस का दावा करने के हकदार नहीं थे। जीवन बीमा निगम का यह तर्क सहज रूप से भ्रामक है और इसे स्वीकार करना संभव नहीं है; विनियम 58 में असंदिग्ध रूप से यह कहा गया है कि लाभ न होने पर भी बोनस में हिस्सा जीवन बीमा निगम द्वारा अपने कर्मचारियों को ऐसे निदेशों के अधीन दिया जा सकता है जैसे केन्द्रीय सरकार दे और इसलिये यदि केन्द्रीय सरकार इसके प्रतिकूल निदेश देती है तो लाभ न होने पर भी बोनस में कोई हिस्सा जीवन बीमा निगम द्वारा अपने कर्मचारियों के किसी भी वर्ग को नहीं दिया जा सकता। किन्तु प्रस्तुत मामले में जीवन बीमा निगम द्वारा समझौते के खण्ड 8(ii) के अधीन वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को जीवन बीमा निगम द्वारा वार्षिक नकद बोनस दिया जाना केन्द्रीय सरकार ने अनुमोदित किया था जैसा कि खण्ड 12 में उपबन्धित किया गया था और विनियम 58 में अनुध्यात 'निदेश' केन्द्रीय सरकार द्वारा दिया गया था कि समझौते के खण्ड 8(ii) में यथा उपबन्धित वार्षिक नकद बोनस दिया जा सकता है। उसके पश्चात् केन्द्रीय सरकार ऐसा कोई प्रतिकूल निदेश देने के लिये सक्षम नहीं थी जिसका प्रभाव यह हो कि वह जीवन बीमा निगम को समझौते के खण्ड 8 (ii) के निबन्धनानुसार औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 18 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक नकद बोनस का संदाय करने की अपनी बाध्यता को भंग करने के लिये विवश करे। समझौते के खण्ड 8(i) पर विचार करते समय यह बात सत्य है कि इस खण्ड के अधीन जीवन बीमा निगम द्वारा लाभ न होने पर भी बोनस में हिस्सा 'ऐसे निर्देशों के अधीन रहते हुए जैसे केन्द्रीय सरकार समय-समय पर जारी करे' दिया जा सकता था किन्तु केन्द्रीय सरकार को समय-समय पर निदेश देने की अध्यारोही शक्ति देने वाले इन शब्दों का खण्ड 8(ii) में प्रमुख रूप से अभाव है और यह बात समझना कठिन है कि उस खण्ड

में इन्हें किस प्रकार रखा जा सकता था अथवा समझा जा सकता था। खण्ड 8 (i) और (ii) सुभिन्न और पृथक खण्ड है और जब कि खण्ड 8 (i) एक सामान्य उपबन्ध अधिनियमित करता है जो यह है कि जीवन बीमा निगम द्वारा वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को लाभ न होने पर भी बोनस का हिस्सा ऐसे निदेशों के अधीन दिया जा सकता है जैसा कि केन्द्रीय सरकार समय-समय पर जारी करे। खण्ड 8 (ii) में लाभ न होने पर बोनस के हिस्से की बात कहीं गई है और विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबन्ध किया गया है कि वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को वार्षिक वेतन के 15 प्रतिशत की दर पर वार्षिक बोनस का संदाय किया जाएगा और वार्षिक नकद बोनस के संदाय के बारे में इस विनिर्दिष्ट उपबन्ध को केवल केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन के अधीन किया गया है, जो स्वीकृत रूप से अभिप्राप्त कर लिया गया था। अतः यह स्पष्ट है कि वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को समझौते के खण्ड 8 (ii) के निबन्धनों के अनुसार जीवन बीमा निगम से वार्षिक नकद बोनस प्राप्त करने का आत्यंतिक अधिकार प्राप्त था और केन्द्रीय सरकार उसको संदाय से इनकार करने अथवा उसे रोकने हेतु जीवन बीमा निगम को कोई निदेश देने के लिए सक्षम नहीं थी।

33. यह सत्य है कि समझौते के खण्ड 8 (ii) के अधीन किसी विशेष वर्ष के लिए वार्षिक नकद बोनस उस वित्तीय वर्ष की बावत जिससे बोनस सम्बन्धित है, कर्मचारी द्वारा वस्तुतः लिए गए वार्षिक वेतन के 15 प्रतिशत की दर पर संदेय है, और इसलिए यह प्रतीत होगा कि बोनस वर्ष के अन्त में संदेय था न कि उससे पूर्व, किन्तु जीवन बीमा निगम की ओर से इस बारे में विवाद नहीं किया गया है कि ऐसा कोई भी कर्मचारी, जो वर्ष के बीत जाने के पूर्व सेवा निवृत्त हो चुका है, अथवा त्यागपत्र दे देता है, और साथ ही मृतक कर्मचारी के ऐसे वारिस, जिनकी वर्ष के दौरान मृत्यु हो जाती है, आनुपातिक बोनस प्राप्त करने के हकदार और वस्तुतः जीवन बीमा निगम ने तारीख 29 मार्च, 1974 वाले प्रशासनिक अनुदेशों में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि यह सही स्थिति है और वस्तुतः सेवा निवृत्त अथवा त्यागपत्र देने वाले कर्मचारी और मृत कर्मचारी के वारिसों को आनुपातिक बोनस का संदाय किया जाए। समझौते के खण्ड 8 (ii) के अधीन संदेय वार्षिक नकद बोनस दिन प्रतिदिन प्रोदभूत हुआ यद्यपि वह सेवानिवृत्ति, त्यागपत्र अथवा मृत्यु

की दशा में उस आकस्मिकता के होने पर ही संदेय है और अन्यथा बोनस से सम्बन्धित वर्ष के बीत जाने पर संदेय है। इस प्रकार सहज रूप से और निस्संदेह रूप से वर्ग 3 और वर्ग 4 के हर एक कर्मचारी को वार्षिक नकद बोनस की बाबत एक ऋण दिन प्रतिदिन प्रोद्भूत हुआ और परिणामस्वरूप 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 वाले वर्ष की समाप्ति पर समझौते के खण्ड 8 (2) के अधीन संदेय वार्षिक नकद बोनस एक न शोध्य ऋण था और वह जीवन बीमा निगम से वर्ग 3 और वर्ग 4 के हर एक कर्मचारी को देय था और उस तारीख को भी जब आक्षेपित अधिनियम प्रवृत्त हुआ वर्ग 3 और वर्ग 4 का हर एक कर्मचारी शोध्य ऋण का हकदार था और उसे 1 अप्रैल, 1976 से अद्यतन तारीख तक वार्षिक नकद बोनस की बाबत जीवन बीमा निगम पर उसका ऋण था। प्रश्न यह है कि क्या यह शोध्य ऋण और जो जीवन बीमा निगम द्वारा दिए जाने थे, अनुच्छेद 31 (2) के अर्थ के भीतर वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों की सम्पत्ति थे, साथ ही क्या आक्षेपित अधिनियम के प्रारम्भ होने की तारीख से 31 मार्च, 1977 तक वार्षिक नकद बोनस प्राप्त करने का वर्ग 3 और वर्ग 4 के हर एक कर्मचारी का अधिकार अनुच्छेद 31 (2) के प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति था? अब हम इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए अग्रसर होंगे क्योंकि उनके उत्तर पर ही अनुच्छेद 31 (2) के लागू होने का प्रश्न निर्भर करता है।

34. संविधान के भाग 3 में समाविष्ट मूल अधिकारों की स्कीम से यह बात स्पष्ट है कि सम्पत्ति के अधिकार की गारंटी अनुच्छेद 19 (1) (च) और अनुच्छेद 431 के खण्ड (1) और (2) में है। यह बात तर्कसम्मत नहीं है कि 'सम्पत्ति' का अनुच्छेद 19 (1) (च) में एक अर्थ हो सकता है और अनुच्छेद 31 के खण्ड (1) में एक अन्य अर्थ हो सकता है और अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) में उससे भी भिन्न अर्थ हो सकता है। इन सभी तीनों अनुच्छेदों में 'सम्पत्ति' का एक ही अर्थ होना चाहिए और चूंकि यह ऐसे सांविधानिक उपबन्ध है जिनका आशय मूल अधिकार सुनिश्चित करना है अतः उनका विशद अर्थान्वयन किया जाना चाहिए और उनके बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वे हर प्रकार की सम्पत्ति के प्रति निर्देश करते हैं।

1978(2) eILR(PAT) SC 116

आर० सी० कूपर बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 42 के प्रविषय और अन्तर्वस्तु पर विचार विमर्श करते समय, जो संसद को और राज्य विधानमण्डलों को 'सम्पति के अर्जन और अभिग्रहण' की बाबत विधान बनाने की शक्ति प्रदत्त करती है, बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए न्यायाधिपति शाह ने यह संकेत किया था कि इस प्रविष्टि के अधीन वह सम्पति जो विधान द्वारा आवश्यक रूप से अर्जित की जा सकती है, इससे अभिप्रेत है 'व्यक्ति का किसी वस्तु को रखने का सर्वोच्च अधिकार, जो ऐसा अधिकार है जो कोई व्यक्ति भूमियों अथवा वासगृहों माल अथवा चल सम्पति पर रखता है जो किसी अन्य के सौहार्द पर निर्भर नहीं करता है। इसमें स्वामित्व, सम्पदाएं और मूर्त वस्तुओं के हित और साथ ही ऐसे अधिकार भी हैं जैसे कि व्यापार चिह्न, प्रतिलिप्यधिकार, पेटेंट्स और यहां तक कि ऐसे व्यक्तिगत अधिकार जिन्हें अन्तरित अथवा हस्तांरित किया जा सकता है जैसे कि ऋण और यह ऐसा फायदाप्रद अधिकार अथवा वस्तु का अर्थबोध कराता है जिसका धनीय मूल्य हो, विशेष रूप से अन्तरण अथवा उत्तराधिकार के संबंध में और जिन्हें हानि पहुंचाई जा सकती हो।' अतः यह प्रतीत होगा कि **आर० सी० कूपर वाले मामले**[1] में बहुमत के विनिश्चय के अनुसार ऋण और ऐसे अन्य व्यक्तिगत अधिकार जिन्हें अन्तरित या हस्तांतरित किया जा सकता है ऐसी सम्पत्ति है जो आवश्यक अर्जन की विषयवस्तु हो सकते हैं और सिद्धांत इसे प्रश्नास्पद नहीं किया जा सकता है क्योंकि न्यायशास्त्रीय रूप से ऋण और अनुयोजन के अन्य अधिकार सम्पत्ति है और सांविधानिक गारंटी के संरक्षण से उन्हें अपवर्जित करने का कोई कारण नहीं है। मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह ने **हिज हाइनेस महाराजधिराज माधव राव जीवाजी राव सिंधिया बहादुर और अन्य** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में ऋण की सही प्रकृति पर विचार किया, जिसमें यह प्रश्न विचाराधीन था कि क्या शासक को संदेय निजी थैली सम्पत्ति थी जिसके बारे में यह कहा जा सकता था कि शासक के रूप में अभिज्ञान समाप्त करने वाले राष्ट्रपति के आदेश से उसे वंचित किया जाता है। विद्वान मुख्य न्यायाधिपति ने ऋण में अन्तर्वलित न्यायिक संबंध का बहुत ही गहन विश्लेषण करते हुए यह संकेत किया कि "ऋण

---

1. (1970) 3 एस० सी० आर० 530-[1974] 3 उम० नि० प० 1045.
2. (1971) 3 एस० सी० आर० 9-[1971] 1 उम० नि० प० 491.

या धन संदत्त करने का दायित्व चार प्रक्रमों से गुजरता है पहले प्रक्रम में ऐसा ऋण होता है जो अभी देय नहीं हुआ है । यह ऋण बाध्यताकारी की 'वस्तुओं' का भाग नहीं बना है क्योंकि कोई शुद्ध दायित्व अभी तक उदभूत नहीं हुआ है । दूसरा प्रक्रम तब होता है जब दायित्व उद्भूत हो चुका हो किन्तु वह या तो निश्चित नहीं है या उसे स्वीकार नहीं किया गया है । यहां पर भी देय रकम बाध्यताकारी की वस्तुओं का भाग नहीं बनी है । तीसरा प्रक्रम तब आता है जब दायित्व अभिनिश्चत हो गया है और उसे स्वीकार कर लिया गया है । तब यह लेनदार के हाथों में ऋणी की वास्तविक सम्पति होती हैं । विधि ऐसी सम्पत्ति को दिवाला में, लेनदारों के साथकपट पूर्ण व्यवहार में, साम्यापूर्ण विबन्ध में और अभिवहन में रोक लगाने आदि विषयों में मान्यता प्रदान करती है । तब प्रत्यय ऋण ऐसा है जो पूरी तौर से साबित किया जा सकता है और जो निश्चित है तथा आत्यन्तिक रूप से देय है । अन्तिम प्रक्रम तब होता है जब ऋण न्यायालय की डिक्री के कारण निर्णीत ऋण बन जाता है ।" और इस कसौटी को लागू करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि निजी थैली सम्पति होगी और उन्होंने इसके आगे यह कहा "ज्यों ही विनियोग अधिनियम (एप्रोप्रिएशन ऐक्ट) पारित होता है, प्रत्यय ऋण की स्थापना हो जाती है और बकाया निजी थैलियां शासक की ऐसी सम्पति हो जाती है जो सरकार के हाथों में हैं । यह ऐसी रकम भी है जो निश्चित है और आत्यन्तिक रूप से देय है ।" चूंकि राष्ट्रपति के आदेश का प्रभाव शासक को अपनी निजी थैली से वंचित करना था जो उसकी सम्पति थी, विद्वान मुख्य न्यायाधिपति ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 31 (2) के अधीन शासक के मूल अधिकार का अतिलंघन हुआ है । न्यायाधिपति हेगडे ने एक पृथक किन्तु सम्मत निर्णय में यह संकेत किया कि निजी थैली प्राप्त करने का अधिकार ऐसा विधिक अधिकार है जिसे 'न्यायालयों के माध्यम से प्रवर्तित कराया जा सकता है' निस्संदेह रूप से यह सम्पत्ति है और इससे वंचित किया जाना अनुच्छेद 31 (2) के अतिलंघन पर पिटीशन को आधारित करने के लिए पर्याप्त है । **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **रानोजीरा राव** शिंदे **और एक अन्य**[1] वाले मामले में भी इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य से वार्षिक तौर पर नकद अनुदान प्राप्त करना अनुच्छेद 19 (1) (च) के और अनुच्छेद 31 के

[1] (1968) 3 एस० सी० आर० 489-[1968] 1 उम० नि० प० 21.

खण्ड (2) में उस पद के अर्थ के भीतर सम्पत्ति है । पेंशन के अधिकार को भी **देवकीनन्दन प्रसाद** बनाम **बिहार राज्य**[1] और **पंजाब राज्य** बनाम **के० आर० ऐरि** और **सोभाग राय मेहता**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों द्वारा अनुच्छेद 19 (1) (च) के प्रयोजनार्थ सम्पत्ति समझा गया है। इस न्यायालय ने वहीं तर्क पद्धति अपनाते हुए **गुजरात राज्य और एक अन्य** बनाम **श्री अम्बिका मिल्स लिमिटेड, अहमदाबाद**[3] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि 'असंदत्त संचय कर्मचारियों के प्रति नियोजकों की बाध्यता का निरूपण करते हैं और वे कर्मचारियों की सम्पत्ति है ।" न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए न्यायाधिपति मैथ्यू ने यह मत व्यक्त किया कि कर्मचारियों के प्रति नियोजकों की बाध्यता 'कर्मचारियों के दृष्टिकोण से सम्पत्ति' है, अतः यह उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 19(1)(च) और अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अर्थ के भीतर सम्पत्ति के अन्तर्गत हर प्रकार की सम्पत्ति मूर्त अथवा अमूर्त है जिसमें ऋण और अनुयोज्य वस्तुएं (Choses in action) सम्मिलित है जैसे कि मजूरी, पेंशन, नकद अनुदान और सांविधानिक रूप से संरक्षित निर्जी थैली के असंदत्त संचय। अतः नकद वार्षिक बोनस की बाबत जीवन बीमा निगम द्वारा दिए जाने वाले और उससे शोध्य ऋण अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अर्थ के भीतर स्पष्ट रूप से वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों की सम्पत्ति थी और उसी प्रकार आक्षेपित अधिनियम के प्रारम्भ होने की तारीख से 31 मार्च, 1977 तक की अवधि के लिए वार्षिक नकद बोनस प्राप्त करने का उनका अधिकार भी सम्पत्ति था क्योंकि वह ऐसा विधिक अधिकार था जिसे परमादेश के रिट जारी करके न्यायालय के माध्यम से प्रवर्तित कराया जा सकता था। (देखिए प्रिवी पर्स वाले मामले में पृष्ठ 194 पर न्यायाधिपति हेगडे की मताभिव्यक्तियां)।

35. किन्तु प्रत्यर्थियों की ओर से यह प्रश्न उठाया गया कि क्या ऋण और अनुयोज्य वस्तु यद्यपि वह निस्संदेह रूप से सम्पत्ति है, आवश्यक अर्जन की विषयवस्तु हो सकती है जिससे कि अनुच्छेद 31 का खण्ड (2) उस पर लागू हो सके। इस प्रश्न पर संयुक्त राज्य अमरीका के न्यायशास्त्रियों में मतभेद है और यद्यपि अमरीकी न्यायालयों के पूर्ववर्ती

---

[1] (1971) सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 634-[1971] 3 उम० नि० प० 305.

[2] (1973) 2 एस० सी० आर० 405-[1973] 1 उम० नि० प० 284.

[3] (1974) 3 एस० सी० आर० 760-[1974] 2 उम० नि० प० 152.

विनिश्चयों में यह कहा गया है कि सर्वोपरि आधिपत्य की शक्ति का धन और अनुयोज्य वस्तु की बाबत प्रयोग नहीं किया जा सकता है किन्तु आधुनिक ढंग, जैसा कि निकोलो कृत एमिनेंट डोमेन, जिल्द 1, पृष्ठ 99 के पैरा 2 में संकेत किया गया है, यह है कि सर्वोपरि आधिपत्य के अधिकार का प्रयोग अनुयोज्य वस्तुओं पर किया जा सकता है। किन्तु यहां तक कि यदि संयुक्त राज्य अमेरिका में यह दृष्टिकोण अभिभावी रहा है कि अनुयोज्य वस्तु सर्वोपरि आधिपत्य की शक्ति के भीतर नहीं आ सकती तो भी हमारे लिए अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के प्रविषय और परिधि का निर्वचन करने में इस दृष्टिकोण से असम्यक रूप से प्रभावित होना ठीक नहीं है। हमें सर्वोपरि आधिपत्य के विषय पर संयुक्त राज्य अमेरिका में की विधि से लिए गए किन्हीं पूर्व कल्पित सिद्धांतों के बिना अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का निर्वचन उसके ही निबन्धनों के आधार पर करना चाहिए। अब हमें यह विचार करना है कि निर्वचन के इस प्रयोग का इस न्यायालय के विनिश्चयों में कहां तक पालन किया गया है जो इस न्यायालय ने अब तक दिए हैं और वे विनिश्चय इस विषय पर क्या प्रकाश डालते हैं कि क्या अनुयोज्य वस्तु को अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन आवश्यक रूप से अर्जित किया जा सकता है। हम अपना ध्यान केवल अनुयोज्य वस्तु के आवश्यक अर्जन के प्रश्न तक ही सीमित रखेंगे और धन के आवश्यक अर्जन के बारे में कुछ नहीं कहेंगे क्योंकि इन अपीलों में केवल अनुयोज्य वस्तु के बारे में ही प्रश्न उठाया गया है और इस बात पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या धन आवश्यक अर्जन की विषयवस्तु हो सकता है। **बिहार राज्य** बनाम **कामेश्वर सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के संविधान न्यायपीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया। बिहार लैण्ड रिफार्म्स ऐक्ट, 1970 की धारा 4 (बी) पर, जिसमें मालिकों अथवा भूधारियों को देय भाटक की बकाया का उनके द्वारा धारित सम्पदाओं अथवा अभिधृतियों के विनिधान की तारीख से पूर्व की अवधि के लिए प्रतिकर की रकम के तौर पर केवल 50 प्रतिशत के संदाय करने पर, राज्य में विनिधान का उपबन्ध किया गया है, सांविधानिक रूप से अविधिमान्य होने की आपत्ति इस आधार पर की गई थी कि ऐसा कोई लोक प्रयोजन नहीं था जिसके लिए यह कहा जा सकता हो कि ऐसा अर्जन किया गया

---

[1] (1952) एस० सी० आर० 889.

था। अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) से ऐसी कोई बात सिद्ध करनी नहीं चाही गई थी कि जिससे लोक प्रयोजन के अस्तित्व की आवश्यकता प्रकट होती हो क्योंकि यदि उस खण्ड का अतिक्रमण हुआ था तो भी अनुच्छेद 31 (क) और अनुच्छेद 31 (ख) के साथ पठित नवम् अनुसूची द्वारा इसका संरक्षण होता है क्योंकि इस अधिनियम को नवम् अनुसूची की मद 1 में सम्मिलित किया गया है किन्तु यह कहा गया है कि लोक प्रयोजन अर्जन की शक्ति की प्रकृति से ही एक आवश्यक तत्व है और यहां तक कि अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अलावा भी लोक प्रयोजन के सिवाय कोई अर्जन नहीं किया जा सकता था। इस तर्क के सदर्भ में न्या० महाजन ने यह मत व्यक्त किया कि धन और अनुयोज्य वस्तु को आवश्यक अर्जन की शक्ति के भीतर नहीं लिया जा सकता है क्योंकि जो एकमात्र प्रयोजन ऐसे लेने से पूरा होगा वह राज्य के राजस्व में वृद्धि करना है और स्पष्ट रूप से वह एक लोक प्रयोजन नहीं है। विद्वान् न्यायाधीश ने रिपोर्ट के पृष्ठ 942-944 पर यह संकेत किया है—

> "यह विधि की एक स्वीकृत प्रस्थापना है कि राज्य के राजस्व में वृद्धि करने मात्र के प्रयोजनार्थ राज्य द्वारा व्यक्तियों की सम्पत्ति को आवश्यक अर्जन की शक्ति के अधीन उपयोजित नहीं किया जा सकता है। ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं है जिसमें इसे विक्रय द्वारा अथवा अन्यथा राजस्व में वृद्धि करने मात्र के प्रयोजनार्थ लिया गया हो। सर्वोपरि आधिपत्य के अधिकार के अधीन धन को इसमें सम्मिलित करना, जब उसके पश्चात् धन के रूप में इसका प्रतिकर दिया जाए, न्यूनाधिक रूप से एक वैवश्यक उधार है। धन अथवा ऐसी वस्तु जो सामान्य रूप से बहुत हस्तांतरित होती है, और जिसे सरकार कराधान द्वारा प्राप्त कर सकती है, और साथ ही अनुयोजन के अधिकार भी, जो केवल तभी उपलभ्य हो सकते हैं जब उनसे धन पैदा करने का आशय हो, इस शक्ति के अधीन नहीं लिया जा सकता है।"।

क्योंकि उनका लिया जाना एक लोक प्रयोजन नहीं होगा और उसके आगे यह कहा कि भाटक के बकाया के अर्जन के समर्थन का एकमात्र प्रयोजन 'उन कुछ जमींदारों को प्रतिकर का भुगतान करने के लिए जिनकी सम्पदाओं को लिया जा रहा है, राजस्व एकत्रित करना था' और यह प्रयोजन

लोक प्रयोजन पद की किसी भी परिभाषा के चाहे वह कितनी भी विस्तृत हो, भीतर नहीं आता है और इस सीमा तक वह विधि असांविधानिक है। न्या० मुखर्जी भी उस निष्कर्ष पर पहुंचे और उन्होंने रिपोर्ट के पृष्ठ 961 पर यह मत व्यक्त किया —

> "इस रूप में धन और साथ ही अनुयोजन के अधिकार भी अमरीकी न्यायशास्त्रियों द्वारा इस सूची से सामान्यरूप से अपवर्जित किए गए हैं और ऐसा करने के सुआधार हैं। उनमें से किसी को भी सर्वोपरि आधिपत्य की शक्ति के अधीन लेने की आवश्यकता की सम्भावना नहीं होती है। किसी नागरिक के धन को कराधान की शक्ति के प्रयोग द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है इसे न्यायिक आदेश के अधीन शास्ति के तौर पर अधिहृत किया जा सकता है ········ किन्तु जैसा कि कूले ने संकेत किया है सर्वोपरि आधिपत्य के अधिकार के अधीन धन को उस दशा में लेना जब उसके पश्चात् इसका धन द्वारा प्रतिकार दिया जाए तो यह न्यूनाधिक रूप से वैवश्यक उधार ही है और यह कहना कठिन है कि यह अर्जन के शीर्षक के अधीन आता है और·····यह उसके सामान्य अर्थ के अन्तर्गत है।"

न्या० चन्द्रशेखर अय्यर ने भी वही दृष्टिकोण अपनाया और यह अभिनिर्धारित किया कि धन और अनुयोघ्य वस्तु को आवश्यक अर्जन से 'इस आधार पर नहीं कि वे जंगम सम्पत्ति है बल्कि इस आधार पर कि सामान्य तौर पर उनके अर्जन में कोई लोक प्रयोजन नहीं है,' छूट प्राप्त है। दूसरी ओर मुख्य न्यायाधिपति पातंजलि शास्त्री और न्या० दास ने यह अभिनिर्धारित किया कि भाटक की बकाया अभिधारियों द्वारा देय ऋण गठित करती है। यह अभिधारियों के विरुद्ध न्यायोचित दावों के अतिरिक्त कुछ नहीं है जो निस्संदेह रूप से सम्पत्ति की एक प्रजाति है जो समनुदेशनीय है इसलिए इसे राज्य द्वारा समान रूप से सम्पत्ति की एक प्रजाति के रूप में अर्जित किया जा सकता है। **बॉम्बे डाइंग एण्ड मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड** बनाम **मुम्बई राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए न्या० वेंकटरामा अय्यर ने इन दो विरोधी दृष्टिकोणों के प्रति निर्देश किया है किन्तु विद्वान् न्यायाधीश ने बहुमत वाले

---

[1] (1958) एस० सी० आर० 1122.

निर्णय को इस विषय पर विधि को अन्तिम रूप से सुस्थिर करने वाला नहीं माना है। यह प्रतीत होता है कि **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **रानोजी राव शिंदे**[1] वाले पश्चातवर्ती मामले में न्या० हेगडे ने न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया कि **कामेश्वर सिंह वाले मामले**[2] के बहुमत वाले दृष्टिकोण का **बॉम्बे डाइंग एण्ड मैन्यूफैक्चरिंग** कम्पनी **लिमिटेड वाले मामले**[3] में अनुसरण किया गया था किन्तु हमारा यह विचार है कि यह मताभिव्यक्ति **बॉम्बे डाइंग एण्ड मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी वाले मामले**[3] में जो कुछ विनिश्चित किया गया था उसका सही तौर पर निरूपण करती है। न्या० वेंकटरामा अय्यर ने अपना विनिश्चय **बॉम्बे डाइंग एण्ड मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी वाले मामले**[3] में विनिश्चय का आनुकल्पिक आधारों पर अवलम्ब किया है : यदि आक्षेपित धारा में धन के अर्जन का उपबन्ध किया गया और यदि धन अर्जित नहीं किया जा सकता है तो वह धारा अनुच्छेद 19 (1) (च) के अधीन शून्य है क्योंकि यह सम्पत्ति धारण करने के अधिकार पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करती है। यदि दूसरी ओर, धन अर्जित किया जा सकता है तो यह धारा शून्य है क्योंकि यह धारा अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का अतिवर्तन करने के कारण शून्य है क्योंकि उस धारा में प्रतिकर के संदाय का उपबन्ध नहीं किया गया। अतः **बॉम्बे डाइंग एण्ड मैन्यूफक्चरिंग कम्पनी वाले मामले**[3] के विनिश्चय में यह अधिकथित नहीं किया गया था कि धन और अनुयोज्य वस्तु को अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन अर्जित नहीं किया जा सकता है।

36. किन्तु **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **रानोजी राव शिंदे वाले मामले**[1] में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित नहीं किया था कि धन और अनुयोज्य वस्तु अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन अर्जन की विषयवस्तु नहीं हो सकते थे और यह दृष्टिकोण अपनाने के लिए इसने जो तर्क दिया है वह वही था जो **कामेश्वर सिंह वाले मामले**[2] में बहुमत वाले न्यायाधीशों का था। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि

---

[1] (1968) 3 एस० सी० आर० 489=[1968] 1 उम० नि० प० 21.

[2] (1952) एस० सी० आर० 889.

[3] (1958) एस० सी० आर० 1122.

अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन प्रदत्त आवश्यक अर्जन की शक्ति का राज्य के कोष समृद्ध करने के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता है: उस शक्ति का केवल लोक प्रयोजन के लिए ही प्रयोग किया जा सकता है और राज्य के स्त्रोतों में वृद्धि करना लोक प्रयोजन नहीं माना जा सकता है। न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए न्या० हेगड़े ने यह संकेत किया कि यदि इससे अन्यथा होता तो "विधानमण्डल के लिए ऐसी विधियां अधिनियमित करना अनुज्ञेय होता जिनके द्वारा राज्य से शोध्य समस्त लोक ऋणों को, उसके द्वारा लौटाए जाने वाले वार्षिक निक्षेपों को और उसके द्वारा संदेय भविष्य-निधि को अर्जित किया जा सकता जिसमें उन व्यक्तियों को कुछ नाम मात्र के प्रतिकर का संदाय का उपबन्ध कर दिया जाता जिनके अधिकार अर्जित किए जाएं क्योंकि प्रश्नगत अर्जनों से राज्य के साधनों की वृद्धि होती है" किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) में ऐसी कोई बात अनुध्यात की गई है। पहले हम सिद्धान्त के तौर पर यह परीक्षा करें कि क्या अनुयोज्य वस्तु वाला यह तर्क सही है और हमारे द्वारा स्वीकार किए जाने योग्य है।

37. वह आधार जिस पर यह तर्क आधारित है कि वह एक मात्र प्रयोजन जिसके लिए अनुयोजन वस्तु को अर्जित किया जा सकता है, वह राज्य के राजस्व में वृद्धि करना है और ऐसे अर्जन का कोई अन्य प्रयोजन नहीं हो सकता है। किन्तु यह आधार सहज रूप से गलत है और उसी प्रकार इस पर आधारित तर्क भी है। अनुयोज्य वस्तु को राज्य के राजस्व में वृद्धि करने मात्र से भिन्न लोक प्रयोजन के लिए अर्जित क्यों नहीं किया जा सकता है? निर्धन और दीन खेतिहरों, दस्तकारों और भूमिहीन श्रमिकों द्वारा साहूकारों को देय ऋण हो सकते हैं और राज्य ऐसे ऋणों को निर्धन और शोषित ऋणियों को परेशानी और दमन से, जो कि आर्थिक रूप से समृद्ध उनके लेनदार कर सकते हैं, मुक्ति दिलाने की दृष्टि से अर्जित कर सकता है। ऐसी दशा में अर्जन का प्रयोजन राज्य के कोष को समृद्ध करना नहीं होगा। वस्तुतः ऐसे अर्जन राज्य का कोष समृद्ध नहीं होगा क्योंकि ऋणी की वित्तीय दशा को ध्यान में रखते हुए राज्य के लिए कंगाल बना दिए गए ऋणियों से अधिक अथवा कुछ भी वसूल कर पाना सम्भव नहीं होगा। ऐसे अर्जन का प्रयोजन निर्धन और असहाय ऋणियों को व्यथा से अनुतोष दिलाना

होने के कारण स्पष्टतया लोक प्रयोजन होगा । हमने दृष्टांत स्वरूप एक उदाहरण दिया है किन्तु आधुनिक कल्याणकारी ऐसे राज्य में जो समाजवादी ढंग के समाज के प्रति समर्पित ऐसी असंख्य स्थितियां उत्पन्न हो सकती है जिनमें अनुयोज्य वस्तु को लोक प्रयोजन की प्राप्ति के लिए अर्जित करना आवश्यक हो । यह कहना सही नहीं है कि हर एक मामले में जिसमें अनुयोज्य वस्तु को अर्जित किया जाए, अर्जन का प्रयोजन आवश्यक रूप से और सदैव ही राज्य के राजस्व में वृद्धि करना होगा और उसके अतिरिक्त कुछ नहीं । अनुयोज्य वस्तु के अर्जन की दशा में वैवश्यक उधार का सिद्धान्त भी भंग हो सकता है । अनुयोज्य वस्तु और धन के बीच मूलभूत अन्तर है क्योंकि पूर्वकथित में वह गतिशीलता और विनिमयता नहीं है जो पश्चातवर्ती में है और इसका मूल्य इसके अधीन वसूलीय रकम द्वारा नहीं मापा जाता है बल्कि यह ऐसे बहुत से तथ्यों पर निर्भर करता है जैसे दायी व्यक्ति की वित्तीय स्थिति मुकदमे की प्रक्रिया की गति और प्रभाविकता और अन्ततोगत्वा यह अनिश्चितता कि अनुयोज्य वस्तु को कब और किस सीमा तक वसूल करना सम्भव हो सकता है । यहां तक कि अनुयोज्य वस्तु के अर्जित किए जाने के पश्चात् भी राज्य इसके अधीन शोध्य रकम को वसूल करने में समर्थ न हो और ऐसे मामले में भी हो सकते हैं जिनमें राज्य द्वारा अनुयोज्य वस्तु को निर्मुक्त कर दिया जाए । जहां धन लेने के लिए प्रतिकर के तौर पर धन दिया जाता है वहां वैवश्यक उधार का सिद्धान्त लागू हो सकता है किन्तु इस बात को समझना कठिन है कि यह वहां किस प्रकार लागू हो सकता है जहां अनुयोज्य वस्तु ली जाती है और इसके मूल्य का निरूपण करने वाला धन, जो अधिकांश मामलों में उसके अधीन वसूलीय रकम से कम होगा, प्रतिकर के रूप में दिया जाता है । इसके अतिरिक्त वैवश्यक उधार का सिद्धांत संविधान (25 वां संशोधन) अधिनियम, 1971 द्वारा अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) में संशोधन किए जाने के पश्चात् पर्याप्त रूप से समाप्त हो जाता है क्योंकि संशोधित खण्ड के अधीन यहां तक कि यदि न्यायसंगत वस्तु से कम कोई रकम सम्पत्ति के अर्जन के लिए प्रतिकर के तौर पर दी जाती है तो यह सांविधानिक गारंटी का अतिक्रमण नहीं होगी । यह सत्य है और यह विचार न्या० कृष्ण अय्यर और मैंने **केरल राज्य बनाम ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्यूफैक्चरिंग (वीविंग) कम्पनी लिमिटेड**[1]

[1] (1974) 1 एस० सी० आर० 671 [1973] 3 उम० नि० प० 1222.

वाले मामले में एक पृथक् किन्तु सम्मत निर्णय में व्यक्त किया था कि अनुच्छेद 31 के संशोधित खण्ड (2) के बावजूद विधानमण्डल से यह प्रत्याशा की जाती है कि असाधारण सामाजिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को छोड़ते हुए वह सम्पत्ति के अर्जन के लिए न्यायसम्मत प्रतिकर का उपबन्ध करे किन्तु यदि किसी कारण से विधानमण्डल न्यायसम्मत समतुल्य रकम से कम का उपबन्ध करता है तो इसे अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का अतिलंघन करने के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है वैवश्यक उधार का सिद्धांत तब कैसे लागू हो सकता है जब अनुयोज्य वस्तु अर्जित की जाती है और इसके लिए जो कुछ भुगतान किया जाता है वह न्यायसम्मत समतुल्य राशि नहीं है बल्कि बहुत कम रकम है जो वस्तुतः भ्रामक नहीं है। इसके अतिरिक्त इस तर्क में अन्तर्निहित एक अन्य भ्रान्ति यह है कि अनुयोज्य वस्तु के अर्जन में कोई लोक प्रयोजन नहीं हो सकता है और वह इस उपधारणा पर आधारित है कि अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) द्वारा अनुध्यात लोक प्रयोजन उस प्रयोग में होता है जिसके लिए अर्जित सम्पत्ति का प्रयोग किया जाना है उदाहरणार्थ जहाँ भूमि अथवा भवन अथवा कोई अन्य जंगम सम्पत्ति लोक प्रयोजन के उपयोग के लिए अर्जित की जाए। किन्तु इस उपधारणा को अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) की भाषा से न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि यह खण्ड जो कुछ अपेक्षित करता है वह यह है कि वह प्रयोजन जिसके लिए अर्जन किया जाता है लोक प्रयोजन होना चाहिए अथवा दूसरे शब्दों में वह अर्जन लोक प्रयोजन को प्राप्त किए जाने के लिए किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 31 का खण्ड (2) यह अपेक्षा नहीं करता है कि अर्जित सम्पत्ति का लोक प्रयोजन के लिए उपयोग किया जाना चाहिए। जब तक अर्जन लोक प्रयोजन में सहायक है, तब तक यह अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) की अपेक्षा को पूरा करता है और इसलिए यदि यह दर्शित किया जा सकता है कि अनुयोज्य वस्तु का अर्जन लोक प्रयोजन को पूरा करने के लिए है तो यह सांविधानिक रूप से विधिमान्य होगा। **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **रानोजी राव शिंदे**[1] वाले मामले में न्या० हेगड़े ने यह आशंका व्यक्त की कि यदि इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया जाए तो विधानमण्डल ऐसी विधियां अधिनियमित कर सकता है जिनके द्वारा राज्य से शोध्य लोक ऋणों, उसके द्वारा वापिस किए जाने वाले वार्षिक निक्षेपों और उसके द्वारा

---

[1] (1968) 3 एस० सी० आर० 489=[1968] 1 उम० नि० प० 21.

संदेय की जाने वाली भविष्य निधि को, कुछ नाम मात्र के प्रतिकर का उन व्यक्तियों को संदाय किए जाने का उपबन्ध करके जिनके अधिकार अर्जित किए गए हों, अर्जन किया जा सकता है। हमारा यह विचार है कि यह आशंका सुआधारित नहीं है। यह बात समझना कठिन है कि राज्य को देय लोकऋणों अथवा इसके द्वारा वापिस किए जाने वाले वार्षिक निक्षेपों अथवा उसके द्वारा संदेय भविष्य निधि का अर्जन करने वाली विधि को कौन सा लोक प्रयोजन सम्भाव्य रूप से न्यायोचित ठहरा सकता है। यदि विधानमण्डल ऐसी विधि अधिनियमित करता है जिसके द्वारा इनमें से कोई अनुयोज्य वस्तु अर्जित की जाती है तो यह केवल राज्य के राजस्व में वृद्धि करने मात्र के प्रयोजन अथवा राज्य के व्यय को कम करने के लिए हो सकता है और वह स्पष्ट रूप से लोक प्रयोजन नहीं होगा और ऐसा विधान सहज रूप से सांविधानिक गारंटी का अतिक्रमण होगा जिसे अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) में समाविष्ट किया गया है। अतः हम **कामेश्वर सिंह वाले मामले**[1] में न्या० दास के अल्पमत वाले दृष्टिकोण को न्या० महाजन, न्या० मुखर्जी और न्या० चन्द्रशेखर अय्यर वाले बहुमत वाले दृष्टिकोण पर अधिमान देते हैं।

38. सिद्धान्त रूप से यह स्थिति है। नजीरों पर विचार करते हुए हमारा यह निष्कर्ष है कि **कामेश्वर सिंह वाले मामले**[1] में बहुमत वाले न्यायाधीशों के दृष्टिकोण के और **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **रानोजी राव शिंदे**[2] वाले विनिश्चय के अलावा इस न्यायालय का ऐसा कोई अन्य विनिश्चय नहीं है जिसमें यह दृष्टिकोण अपनाया गया हो कि अनुयोज्य वस्तु को अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन आवश्यक रूप से अर्जित नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः पश्चातवर्ती ऐसे विनिश्चय हैं जो स्पष्टतया इसके प्रतिकूल सुझाव देते हैं। हमने **आर० सी० कूपर वाले मामले**[1] के प्रति पहले ही निर्देश कर दिया है। उस मामले में न्या० शाह के बहुमत वाले निर्णय में 'सम्पत्ति' शब्द को सर्वाधिक विस्तृत अर्थ दिया गया है जिसे, आवश्यक रूप से अर्जित किया जा सकता है और इसके भीतर ऐसे व्यक्ति को अधिकार भी हैं

---

[1] (1952) एस० सी० आर० 889.

[2] (1968) 3 एस० सी० आर० 489=[1968] 1 उम० नि० प० 21.

[3] (1970) 3 एस० सी० आर० 530=[1974] 3 उम० नि० प० 1045.

1978(2) eILR(PAT) SC 116

जिन्हें अन्तरित अथवा हस्तांतरित किया जा सकता है जैसा कि ऋण । कामेश्वर सिंह वाले मामले[1] में बहुमत वाला दृष्टिकोण और मध्य प्रदेश राज्य बनाम रानोजी राव शिंदे[2] वाले मामले में इस मुद्दे पर विनिश्चय को अब न्या० शाह के बहुमत वाले निर्णय में विधि के इस कथन को ध्यान में रखते हुए विधिमान्य विधि नहीं माना जा सकता हैं । उसके पश्चात् प्रिवी पर्स वाले मामले[3] में न्यायाधिपति हेगडे ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी शासक को संदेय निजी थैली उसको प्रत्यय ऋण है और चूंकि उसे राष्ट्रपति के आदेश से वंचित किया जाता है अत: अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन उसके मूल अधिकार का अतिक्रमण होता है । इस प्रकार विद्वान मुख्य न्यायाधिपति ने स्पष्ट रूप से यह मान्य ठहराया कि ऋण अथवा अनुयोज्य वस्तु अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन आवश्यक अर्जन की विषयवस्तु हो सकती है । न्या० हेगडे ने भी प्रिवी पर्स वाले मामले में पृथक किन्तु सम्मत निर्णय में वहीं दृष्टिकोण अपनाया । अत: यह विचारणीय है कि हाल ही के विनिश्चयों की प्रवृत्ति ऋण अथवा अनुयोज्य वस्तु को सम्पत्ति समझने की रही है जिसे अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन आवश्यक रूप से अर्जित किया जा सकता है । तदनुसार हमारा यह दृष्टिकोण है कि जीवन बीमा निगम से वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस की बावत शोध्य और देय ऋण अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अर्थ के भीतर 'सम्पत्ति' है और उन्हें उस खण्ड के अधीन आवश्यक रूप से अर्जित किया जा सकता है ।

39. तथापि यह प्रश्न शेष रहता है कि क्या आक्षेपित अधिनियम द्वारा जीवन बीमा निगम से वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को वार्षिक नकद बोनस की बावत शोध्य और देय ऋणों का आवश्यक रूप से अर्जन किया गया था । जीवन बीमा निगम की ओर से इस बावत विवाद नहीं किया गया है कि यदि आक्षेपित अधिनियम का प्रभाव वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों से सम्बद्ध इन ऋणों को आवश्यक रूप से अर्जित करना था तो यह अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का अतिवर्तनकारी होने के कारण शून्य होगा क्योंकि स्वीकृत रूप से इसमें किसी प्रतिकर के संदाय का उपबन्ध नहीं किया गया था । निस्सन्देह रूप से उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह कहा गया था कि वार्षिक नकद बोनस के संदाय के बारे में समझौते

[1] (1952) एस० सी० आर० 889.

[2] (1968) 3 एस० सी० आर० 489=[1968] 1 उम० नि० प० 21.

[3] (1971) 3 एस० सी० आर० 9=[1971] 1 उम० नि० प० 491.

1978(2) eILR(PAT) SC 1

को 1 अप्रैल, 1975 से अपास्त किया जा रहा है जिससे कि जीवन बीमा निगम कर्मचारियों को अप्रतियोगी सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के कर्मचारियों को आनुग्रहिक संदाय करने की सामान्य सरकारी नीति के आधार पर अवधारित दरों पर, आनुग्रहिक संदाय कर सके। किन्तु आक्षेपित अधिनियम में इस आशय का कोई उपबन्ध नहीं था कि वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को उनको देय ऋण से वंचित किया गया था और उसके लिए कानून में प्रतिकर के संदाय का कोई उपबन्ध नहीं था। किन्तु जीवन बीमा निगम की ओर से विद्वान महान्यायवादी ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि आक्षेपित अधिनियम के अधीन वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को देय ऋण को आवश्यक रूप से अर्जित नहीं किया गया था किन्तु आक्षेपित अधिनियम ने जो कुछ किया वह वार्षिक नकद बोनस के संदाय के बारे में 1 अप्रैल, 1975 के समझौते के उपबन्धों को समाप्त करके इन ऋणों को निर्वापित किया था। विद्वान् महान्यायवादी ने यह कहा कि वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को जीवन बीमा निगम द्वारा देय ऋण निर्वापित कर दिए गए थे और उन्हें आवश्यक रूप से अर्जित नहीं किया गया था और इसलिए अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का कोई उल्लंघन नहीं हुआ था। संविधान (चतुर्थ संशोधन) अधिनियम, 1955 में, जिसने अनुच्छेद 31 में खण्ड (2क) और (2ख) जोड़े, खण्ड (1) और (2) के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में पर्याप्त संविवाद था और उससे खण्ड (2) में जैसा कि यह संशोधन से पूर्व था, "का कब्जा अथवा अर्जित" शब्दों के निर्वचन को अतिरंजित किया गया था। **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **सुबोध गोपाल बोस और अन्य**[1] और **द्वारका दास श्रीनिवास, मुम्बई** बनाम **शोलापुर स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी लिमिटेड और अन्य**[2] वाले मामलों में बहुमत दृष्टिकोण यह था कि अनुच्छेद 31 खण्ड (1) और (2) परस्पर अपवर्जनकारी नहीं हैं बल्कि वे एक ही विषय के बारे में हैं और खण्ड (1) में अनुध्यात वंचन आवश्यक अर्जन अथवा खण्ड (2) में निर्दिष्ट सम्पत्ति के कब्जा लेने से भिन्न नहीं हैं और इसलिए जहां वंचन देना सारवान है कि वह आवश्यक अर्जन अथवा कब्जा लेने की कोटि में आता है तो अनुच्छेद 31 लागू हो जाएगा। अनुच्छेद 31 में खण्ड (2क) के जोड़े जाने से खण्ड (1) और 2 के बीच सम्बन्ध

---

1 (1954) एस० सी० आर० 587.

2 (1954) एस० सी० आर० 674.

समाप्त कर दिया गया था और इन दो खण्डों के बीच विभाजन कर दिया गया था। उसके पश्चात् केवल खण्ड (2) ही राज्य द्वारा सम्पत्ति के आवश्यक अर्जन अथवा अधिग्रहण के बारे में रह गया था और खण्ड (1) अन्य रूपों में सम्पत्ति के वंचन के बारे में है और जिसे खण्ड (2) के प्रयोजनार्थ सम्पत्ति का आवश्यक अर्जन अथवा अधिग्रहण समझा जाएगा, उसे खण्ड (2क) में परिभाषित किया गया है। यह ऐसा है मानों खण्ड (2क) खण्ड (2) में 'सम्पत्ति के आवश्यक अर्जन और अधिग्रहण' के अर्थ के लिए शब्दकोश की व्यवस्था करता है। खण्ड (2क) ने यह घोषणा की कि यदि किसी विधि में राज्य को अथवा राज्य के स्वामित्व में अथवा उसके नियन्त्रण के अधीन निगम को सम्पत्ति के स्वामित्व का अन्तरण अथवा उसके कब्जे के अधिकार का उपबन्ध नहीं करती है तो उसके बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह सम्पत्ति के आवश्यक अर्जन अथवा अधिग्रहण का उपबन्ध करती है। केवल ऐसे मामले में जिसमें विधि राज्य को अथवा राज्य के स्वामित्व में अथवा नियन्त्रण के अधीन निगम को किसी सम्पत्ति के स्वामित्व का अन्तरण अथवा कब्जे के अधिकार का उपबन्ध करती है तो इसे अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) की चुनौती का सामना ऐसी विधि के रूप में करना होगा जो सम्पत्ति के आवश्यक अर्जन अथवा अधिग्रहण का उपबन्ध करती है। अतः जब विधि की सांविधानिक विधि-मान्यता को अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अतिलंघन के आधार पर चुनौती दी जाती है तो यह प्रश्न पूछना होगा कि क्या वह विधि राज्य को अथवा राज्य के स्वामित्व वाले अथवा उसके द्वारा नियन्त्रित निगम को किसी सम्पत्ति के स्वामित्व का अन्तरण अथवा कब्जे के अधिकार का उपबन्ध करती है। प्रस्तुत मामले में जीवन बीमा निगम राज्य के स्वामित्व वाला निगम है क्योंकि इसकी समस्त पूंजी की व्यवस्था केन्द्रीय सरकार ने की है। जीवन बीमा निगम से शोध्य और उसके द्वारा वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को देय समस्त ऋण आक्षेपित अधिनियम द्वारा रद्द अथवा निर्वापित कर दिए गए हैं। क्या वह अनुच्छेद 31 के खण्ड (2क) के अर्थ के भीतर जीवन बीमा निगम को किसी सम्पत्ति के स्वामित्व का अन्तरण करने की कोटि में आता है? यदि यह ऐसा है तो अनुच्छेद 31 का खण्ड (2) लागू होगा किन्तु अन्यथा नहीं। यह बात अनुच्छेद 31 के खण्ड (2क) के सही निर्वचन पर निर्भर करती है।

40. अब अनुच्छेद 31 के खण्ड (2क) का निर्वचन करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि हम इसका जो निर्वचन कर रहे हैं वह अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के अधीन सांविधानिक गारंटी के प्रविषय और परिधि का अवधारण करेगा। अतः हमें खण्ड (2क) का संकुचित पांडित्य पूर्ण रीति में अर्थान्वयन नहीं करना चाहिए और न ही पंडिताऊ अथवा बहुत अधिक विधिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। हमारा निर्वचन विषय-सार से प्रेरित होना चाहिए न कि विधि के शब्दों से। जब खण्ड (2क) में यह कहा गया है कि खण्ड (2) को लागू होने के लिए विधि ऐसी होनी चाहिए कि उस में राज्य को अथवा राज्य के स्वामित्व में अथवा उसके द्वारा नियन्त्रित निगम को सम्पत्ति के स्वामित्व का अन्तरण का उपबन्ध हो तो यह बात आवश्यक नहीं है कि विधि में ऐसे अन्तरण के लिए सुव्यक्त शब्दों में उपबन्ध किया जाए। इसके लिए कोई विशेष शाब्दिक सूत्र अपनाने की आवश्यकता नहीं है। यह कोई ऐसा कर्मकांड का मन्त्र नहीं है जिसके बारे में यह अपेक्षित हो कि विधि में उसकी पुनरावृत्ति की जाए। इस बात पर विचार किया जाना है कि वह विधि का सार है न कि इस का प्ररूप। पूछे जाने वाला प्रश्न यह है कि क्या विधि सारतः सम्पत्ति के स्वामित्व के अन्तरण को उपबन्ध करती है चाहे प्रयुक्त किया गया भाषा सम्बन्धी सूत्र कुछ भी हो। विधि का प्रभाव क्या है —क्या यह सम्पत्ति के स्वामित्व के अन्तरण को प्रभावी करती है? 'स्वामित्व का अन्तरण' पद भी बहुत महत्व का और इसके अन्तर्गत ऐसा हर ढंग आता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को स्वामित्व अन्तरित किया जा सकता है। अन्तरण का ढंग एक प्रकार की सम्पत्ति से दूसरे प्रकार की सम्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न हो सकता है। यह अन्तरित की जाने वाली सम्पत्ति की प्रकृति पर निर्भर करता है और इसके अलावा यह अवधारित करने के लिए कि क्या विधि द्वारा जो कुछ तबदीली की गई है उसमें स्वामित्व का अन्तरण अन्तर्वलित है, न्यायालय को संव्यवहार के सार को देखना होगा।

41. इस बारे में कोई सन्देह नहीं है कि प्रस्तुत मामले में आक्षेपित अधिनियम ने जीवन बीमा निगम द्वारा वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को देय ऋण निर्वापित कर दिए थे अथवा समाप्त कर दिए थे। आक्षेपित अधिनियम का वह प्रत्यक्ष प्रभाव था और इसलिए विधिसम्मत रूप से यह कहा जा सकता है कि आक्षेपित अधिनियम ने सारतः इन ऋणों के निर्वापन का उपबन्ध किया यद्यपि यह बात बहुत सुव्यक्त शब्दों में नहीं कही गई।

जीवन बीमा निगम की ओर से वस्तुतः इस बारे में कोई विवाद नहीं किया गया और पक्षकारों के बीच संविवाद केवल इस प्रश्न तक ही सीमित है कि क्या इन ऋणों के निर्वापन में जीवन बीमा निगम को सम्पत्ति के स्वामित्व का कोई अन्तरण अन्तर्वलित है। जीवन बीमा निगम की ओर से विद्वान् महान्यायवादी ने ऋण के निर्वापन और स्वामित्व के अन्तरण के बीच प्रभेद करना चाहा है और यह दलील दी है कि जब ऋण का स्वामित्व अन्तरित किया जाता है तो यह अन्तरिती के हाथों में भी ऋण के रूप में विद्यमान बना रहता है। किन्तु जब कोई ऋण निर्वापित किया जाता है तो यह ऋण के रूप में विद्यमान रहना समाप्त हो जाता है और यह कहना सम्भव नहीं है कि ऋणी ऋण का स्वामी बन गया है। विद्वान् महान्यायवादी ने यह कहा ऋण के स्वामित्व का अन्तरण तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि वह ऋण अन्तरिती के हाथों में उस रूप में विद्यमान बना रहता है और इसलिए ऋण के निर्वापन में ऋणी को ऋण के स्वामित्व का अन्तरण अन्तर्वलित नहीं है। यद्यपि विद्वान् महान्यायवादी की यह दलील प्रथमतः रोचक प्रतीत होती है किन्तु हमारी यह राय है कि यह सुआधारित नहीं है। यह कहना सही नहीं है कि किसी अधिकार अथवा हित के स्वामित्व का अन्तरण तब तक नहीं हो सकता जब तक ऐसे अधिकार अथवा हित का अन्तरिती के हाथों में पृथक रूप से पहचानने योग्य अस्तित्व बना रहता है। ऐसे उदाहरण खोजना कठिन नहीं है जिनमें किसी अधिकार अथवा हित के स्वामित्व को निर्वापन द्वारा एक से दूसरे व्यक्ति को अन्तरित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए ऐसा मामला लें जिसमें पट्टाकर्ता पट्टेदार को अनुदत्त पट्टे को समपहरण के अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए समाप्त कर देता है अथवा पट्टेदार पट्टाकर्ता के पक्ष में पट्टा अभ्यर्पित कर देता है। ऐसे मामले में पट्टा समाप्त हो जाएगा और पट्टे का हित निर्वापित हो जाएगा और तदनुसार पट्टाकर्ता का प्रतिवर्तन पट्टाधृत हित के वापिस मिल जाने पर पूर्ण स्वामित्व में विस्तृत हो जाएगा। उस में स्पष्टतया पट्टेदार ने पट्टाधृत हित का पट्टाकर्ता को पट्टे के अवधारण और पट्टे के हित के निर्वापन के परिणामस्वरूप अन्तरण होगा। वही स्थिति तब होगी जब कोई विधि किसी पट्टे के रद्द किए जाने का उपबन्ध करती है और ऐसी दशा में यदि पट्टाकर्ता राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व वाला अथवा उसके द्वारा नियन्त्रित निगम है तो यह अनुच्छेद 31 के खण्ड (2क) के अर्थ के भीतर पट्टाधृत हित के आवश्यक अर्जन की कोटि में

1978(2) eILR(PAT) SC 116

आएगा । वस्तुतः **अजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने हमारी राय में यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया था, जिसमें न्या० सीकरी ने बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए पृष्ठ 149 पर यह संकेत किया कि 'यदि राज्य किसी सम्पदा का भूस्वामी है और उस सम्पत्ति का पट्टा दिया गया है और कोई विधि किसी सम्पदा में धृतपट्टे के निर्वापन का उपबन्ध करती है तो यह सम्पत्ति राज्य द्वारा अर्जन की कोटि में आएगी क्योंकि निर्वापन का फायदा राज्य को मिलेगा।' जहां किसी व्यक्ति के अधिकार अथवा हित के निर्वापन के कारण उसके द्वारा हानि सहन की जाती है और उसका तत्संबंधी लाभ राज्य को प्रोद्भूत होती है तो ऐसे अधिकार अथवा हित के स्वामित्व का राज्य को अन्तरण होगा। प्रश्न सदैव ही यह होगा कि विधि द्वारा प्रभावी किए गए अधिकार अथवा हित के निर्वापन का फायदाग्राही कौन है । यदि यह राज्य है तो अधिक अथवा हित के स्वामित्व का राज्य को अन्तरण हो जाएगा क्योंकि अधिकार अथवा हित के स्वामी ने निर्वापन के कारण जो कुछ खोया होता वह राज्य को प्रोद्भूत फायदा हुआ होता । संक्षिप्त रूप से ही कारण था न्या० हेगड़े ने **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **रानोजी राव शिंदे**[2] वाले मामले में न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया कि उस मामले में आक्षेपित मध्य प्रदेश विधि के अधीन नकद अनुदानों की समाप्ति को राज्य के अनुदानगृहीताओं के अधिकारों के कानूनी अन्तरण के रूप में समझना सम्भव है । उस मामले में यह संकेत किया गया था कि दूसरे व्यक्तियों के हाथों में जो धन है उसका राज्य द्वारा लिए जाने के और अन्य व्यक्तियों को संदाय करने के राज्य के दायित्व के निराकरण के बीच कोई अन्तर नहीं है क्योंकि पूर्वकथित मामले में राज्य अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति आवश्यक रूप से लेता है जब कि पश्चात्कथित मामले में यह अन्य व्यक्तियों की सम्पत्ति जो इसके हाथों में है उपयोजित करना चाहता है । अतः यह बात स्पष्ट है कि जब राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व वाले अथवा नियन्त्रण के अधीन निगम द्वारा देय कोई ऋण विधि द्वारा निर्वापित कर दिया जाता है तो लेनदार द्वारा राज्य को अथवा राज्य के स्वामित्व अथवा नियन्त्रण वाले निगम को ऋण का निरूपण करने वाले धन के स्वामित्व का अन्तरण हो जाता है । जब तक ऋण

---

[1] (1967) 2 एस० सी० आर० 143.

[2] (1968) 3 एस० सी० आर० 489=[1968] 1 उम० नि० प० 21.

शोध्य और लेनदार के प्रति देय है तब तक राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व अथवा नियन्त्रण वाला निगम लेनदार को ऋण की रकम का संदाय करने के दायित्वाधीन है और इसलिए यदि ऋण की रकम 'एक्स' है तो लेनदार की कुल सम्पदा 'ए+एक्स' होगी जब कि राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व अथवा नियन्त्रण वाले निगम की सम्पदा बी--एक्स होगी। किन्तु यदि ऋण निर्वापित कर दिया जाता है तो लेनदार का कुल धन में से 'एक्स' कम हो जाएगा और राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व वाले अथवा नियंत्रण वाले निगम के धन में उसी रकम की वृद्धि हो जाएगी। क्या यह सारतः और तत्वतः लेनदारों से राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व/नियन्त्रण वाले निगम को 'एक्स' का अन्तरण नहीं होगा ? लेनदार के ऋण का निर्वापन राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व/नियन्त्रण वाले निगम को तत्संबंधी फायदे सहित सहज तौर पर और असंदिग्ध रूप से उसमें पूर्वकथित से पश्चात्कथित को ऋण के निरूपण करने वाली रकम के स्वामित्व का अन्तरण अन्तर्वलित होगा। ऋण के निर्वापन का यह वास्तविक प्रभाव है और इसे ऋण के निर्वापन के प्ररूप का नाम देने से राज्य अथवा राज्य के स्वामित्व/नियन्त्रण वाला निगम लेनदारों की जोखिम पर फायदा अभिप्राप्त नहीं कर सकता है और साथ ही अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के लागू होने को नहीं बचा सकता है। ऋण के निर्वापन की युक्ति का प्रयोग करते हुए जो शाब्दिक आवरण बनाया गया है, उससे संव्यवहार की वास्तविक प्रकृति को छिपाया नहीं जा सकता है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इस मामले में हमारा सरोकार ऐसे मामले से है जिसमें सांविधानिक रूप से प्रत्याभूत अधिकार को प्रवर्तित करना चाहा गया है और ऐसे अधिकार के संरक्षण को विधायी युक्तियों द्वारा विफल नहीं होने दिया जा सकता है अथवा भ्रामक नहीं बनने दिया जा सकता है। न्यायालयों को ऐसी चालों और युक्तियों को प्रकट करने के लिए तैयार रहना चाहिए और यह खोज निकालना चाहिए कि क्या विधान वस्तुतः और सारतः किन्हीं मूल अधिकारों का अतिक्रमण करता है। प्रायः मूल अधिकारों के अतिक्रमण बहुत सूक्ष्म और जटिल होते हैं और वे ऐसी भाषा में होते हैं जिनसे प्रकटतः यह प्रतीत होता है कि वह सांविधानिक प्रतिषेधों के अन्तर्गत नहीं आती है। अतः अनुमुतिक्षम और सतर्क विधिज्ञ वर्ग की बहुत अधिक आवश्यकता है और न्यायालयों को भी साहसी और गतिशील रुख अपनाना होगा, यदि सांविधानिक अधिकारों को विफल

किए जाने अथवा उनके विनष्ट अथवा समाप्त किए जाने से संरक्षित किया जाना है।

42. इस विचार-विमर्श के प्रकाश में यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि आक्षेपित अधिनियम का प्रत्यक्ष प्रभाव वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को देय ऋणों के स्वामित्व को वार्षिक नकद बोनस की बाबत जीवन बीमा निगम को अन्तरित करना था और चूंकि जीवन बीमा निगम राज्य के स्वामित्व वाला निगम है, आक्षेपित अधिनियम ऐसी विधि है जो अनुच्छेद 31 के खण्ड (2क) के अर्थ के भीतर राज्य द्वारा इन ऋणों के आवश्यक अर्जन का उपबन्ध करती है। यदि ऐसा है तो आक्षेपित अधिनियम के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह अनुच्छेद 311 के खण्ड (2क) का अतिक्रमण करता है क्योंकि इसमें इन ऋणों के आवश्यक अर्जन के लिए किसी प्रतिकर के संदाय का बिल्कुल भी उपबन्ध नहीं किया है।

आधार 'ख' के बारे में—

43. चूंकि आधार (क) के अधीन आक्षेपित अधिनियम के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि यह अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का अतिवर्तन करने के कारण शून्य है अतः आधार (ख) पर, जो कि अनुच्छेद 19(1)(च) के अतिलंघन पर आधारित है, विचार करना अनावश्यक है। इस न्यायालय की यह सुस्थापित परम्परा रही है कि उससे अधिक कुछ विनिश्चित न किया जाए जो मामले के विनिश्चय के लिए नितान्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिए जाने पर कि आक्षेपित अधिनियम अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के भीतर आता है, अनुच्छेद 31 के खण्ड (2ख) के कारण इसकी विधिमान्यता की परख अनुच्छेद 19(1) (च) के प्रति निर्देश करके नहीं की जा सकती। अतः हम अनुच्छेद 19(1) (च) के बारे में हमारे समक्ष दिए गए रोचक तर्कों पर विचार-विमर्श नहीं करना चाहते हैं।

44. तदनुसार हम इन रिट पिटीशनों को मंजूर करते हैं और जीवन बीमा निगम (समझौते का उपान्तरण) अधिनियम, 1976 को संविधान के अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) का अतिवर्तन करने के कारण शून्य घोषित करते हैं और परमादेश का रिट जारी करते हैं जिसमें भारत संघ और

जीवन बीमा निगम से उस अधिनियम के उपबन्धों को लागू अथवा प्रवर्तित करने से विरत रहने का और तारीख 24 जनवरी, 1974 वाले समझौते के खण्ड 8(ii) के निबन्धनों के अनुसार वर्ग 3 और वर्ग 4 के कर्मचारियों को 1 अप्रैल, 1975 से 31 मार्च, 1976 और 1 अप्रैल, 1976 से 31 मार्च, 1977 वाले वर्ष के लिए वार्षिक नकद बोनस का संदाय करने का निदेश देते हैं। प्रत्यर्थी रिट पिटीशनों का खर्चा पिटीशनरों को देंगे।

(न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, एस० मुर्तज़ा फज़ल अली और पी० एन० सिंघल) के अनुसार।

हम बंधु भगवती के निष्कर्ष से सहमत हैं किन्तु हम अपना विनिश्चय इस आधार पर आधारित करते हैं कि आक्षेपित अधिनियम अनुच्छेद 31(2) के उपबन्धों का अतिक्रमण करता है और इसलिए शून्य है। हम 1976 के रिट पिटीशन सं० 371 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के प्रभाव पर कोई राय अभिव्यक्त करना अनावश्यक समझते हैं।

रिट पिटीशन मंजूर किए गए।

श०